मन-2

ब्रह्मर्षि तटवर्ती वीर राघव राव

मन

(PART-2)

लेखक : ब्रह्मर्षि तटवर्ती वीर राघव राव

हिन्दी अनुवादः श्रीमति जे.पुष्पलता

For Books Please Contact :
TATAVARTHY VEERA RAGHAVARAO
Tatavarthivari Street, BHIMAVARAM-534201.
W.G.Dist., A.P. Ph: 94403 09812

Rs.80/-

ब्रह्मविध्वरिष्ठ तटवर्ति राज्यलक्ष्मी के हिन्दी किताब

1) एक और जन्म Rs.160/-
2) साधना में स्थितियाँ.................................. Rs.80/-
3) आत्मा का विकास क्रम Rs.80/-
4) ज्ञान माला... Rs.70/-
5) श्री दत्तात्रेय जी का 24 गुरूओं ।................ Rs.70/-
6) अगर मानव को योगी बनना है तो ?........... Rs.60/-
7) गुरु पूर्णिमा का विशिष्टता Rs.60/-
8) महात्माओं का संदेशों................................ Rs.50/-
9) मानव के कर्तव्यों Rs.50/-
10)गुरु पूर्णिमा का विशिष्टता Rs.50/-
11)जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए? Rs.50/-

ध्यान की पद्धति - श्वास पर ध्यान

हर किसी को अपने लिए उपयुक्त सुखासन में आराम से बैठकर.. दोनों हाथों को मिलाकर... आंखों को बंद करके... सहज रूप से होने वाले उच्छ्वास और निश्वास पर गौर करना है!

बीच में कई सारे विचार हमारे मन में आते रहते हैं, उन सबका खंडन करते हुए... वापस हमारे ध्यान को श्वास पर लाना है... ध्यान भटकता रहेगा लेकिन वापस श्वास पर ध्यान लाते रहना है. धीरे-धीरे.. विचार रहित स्थिति प्राप्त होगी... चित्तवृत्ति का निरोध होगा मन शून्य बन जाएगा। मन शांति प्राप्त करेगा। यही ध्यान स्थिति है।

इस विचार रहित स्थिति में प्राप्त होने वाले शारीरिक, तंत्रिका व्यवस्था और आत्मानुभव पर ध्यान देते रहना है। उस स्थिति में असीमित विश्वमय प्राणशक्ति शरीर के अंदर प्रवाहित होकर तंत्रिका व्यवस्था की शुद्धि करती है। इस शक्ति के कारण सारे रोग दूर हो जाते हैं। तंत्रिका व्यवस्था की शुद्धि के कारण सारे कर्म दूर हो जाते हैं।

साधारण रूप से मनुष्य की उम्र जितनी है.. कम से कम उतने मिनट तक.. हर रोज दिन में दो बार... ध्यान करना है।

''मन को नियंत्रित करना हो तो ?''

आप ध्यान के बारे में जितनी गहराई से जानेंगे, ध्यान में आप उतनी ही ''प्रगति'' हासिल करेंगे, लाभ प्राप्त करेंगे। कुछ भी जाने बिना, यूँ ही आँखें मूँदकर श्वास का अवलोकन करके यदि कोई कहे, मैं ध्यान कर रहा हूँ, लेकिन मुझे यह नहीं आ रहा, वह नहीं आ रहा, तो ऐसा कहने से कोई फायदा नहीं है।

आप जो भी काम करेंगे, सबसे पहले उस पर आपको ''समझ'' होनी चाहिए। आपको जितनी अधिक समझ होगी, उतना ही फल आप प्राप्त कर सकते हैं। किसी भी समझ के बिना नहीं करना चाहिए। जब इतने लाभ हैं, ऐसा बताया जा रहा है, तो आपको इसके बारे में कुछ तो समझ होना चाहिए। यूँ ही कहीं कुछ सुनकर आँखें बंद करके मैं श्वास का अवलोकन कर रहा हूँ, लेकिन मुझे यह नहीं आया, वह नहीं आया, ऐसा कहने से कोई फायदा नहीं है।

हम कहते हैं कि ध्यान बहुत महान है। पत्री जी ने भी उसी तरह कहा। मैं भी अनेक प्रकार के टॉपिक्स के बारे में बताया। उनमें कोई भी टॉपिक उठाएँ, ध्यान में लाभ ही हैं। आख़िर में चाहे कोई भी समस्या लें, चाहे कुछ भी लें, यही कहते हैं कि वह ''ध्यान'' से ही संभव होता है।

ऐसे ध्यान के बारे में जानने की आवश्यकता बहुत अधिक है। आप जितनी गहराई से समझेंगे, उतना ही आचरण में उतारेंगे।

इस ध्यान को करने से बदलाव आना, मुझे आश्चर्य हुआ! मैंने सोचा, आख़िर आँखें बंद करके बैठने में क्या है ? ये बदलाव कैसे आ रहे

हैं ? ये लाभ कैसे आ रहे हैं ? शुरुआत में मुझे भी संदेह हुआ, इसलिए मैंने अच्छी तरह अध्ययन किया। पत्री जी जो भी कहते थे, उसे मैंने कई बार सुना है।

पत्री जी द्वारा लिखी गई ''आनापानसति'' पुस्तक उस समय सीडी में भी बताया गया है, उसे भी कई बार सुना है। इसके बाद ''ध्यान की वजह से लाभ'' नामक पुस्तक मैंने कई बार पढ़ी। ''ध्यान के अनुभव'' नामक पुस्तक भी पढ़ी। उनके अलावा पत्रीजी ने और भी लगभग ''50 पुस्तकें'' लिखी हैं। वे सब भी पढ़ीं। ऐसा पढ़ने से मुझे बहुत अच्छी समझ प्राप्त हुई।

मैंने गहराई से अध्ययन किया है कि ध्यान में ''आँखें बंद करने पर'' असल में क्या होता है। बहुत से बदलाव होते हैं, अनेक लाभ प्राप्त होते हैं। मैं यह जान सका कि यह केवल ध्यान के कारण ही संभव है। मैं अभी उन्हीं विषयों को विस्तार से बताऊँगा। इतना ही नहीं मैं बहुत से गाँवों, बहुत से राज्यों में ही घूमा, कुछ देशों में भी घूमा। इस तरह घूम-घूमकर ध्यान के बारे में बताते रहता था, तो बहुत से लोग बहुत से सवाल पूछते थे। तब स्वाभाविक रूप से, जितना मैं बता सकता था, उतना बता देता था।

अगर मैं जो कह रहा हूँ, उसमें मुझे कोई संदेह होता, तो उस विषय पर फिर से गहराई से अध्ययन करता था। पत्री जी की पुस्तकें पलटता था, या कुछ न कुछ करके समझने की कोशिश करता था। इस तरह जो समझा, उसी के बारे में ही मैंने पुस्तकें भी लिखीं। इसलिए इसे यूँ

ही हल्के में नहीं लेना चाहिए। बहुत-सी बातें जाननी चाहिए। जितना जानेंगे और जितना अध्ययन करेंगे, उतना ही निश्चित रूप से आप सभी लाभ प्राप्त करेंगे।

यहाँ गौर करें, तो ध्यान शरीर से संबंधित नहीं है। इससे हमें समझ में आता है कि ध्यान मन से संबंधित है। इसमें शरीर का कोई जिक्र नहीं है। यह सब मन से संबंधित है। शरीर में भी हमें कोई बड़े बदलाव दिखाई नहीं देते, लेकिन ''आंतरिक रूप से मौजूद मन में'' अनेक बदलाव होते हैं।

इसीलिए पत्री जी भी कहा करते हैं कि शरीर को अपनी मर्जी से ही रखो। उसके लिए कोई भी नियम नहीं हैं। बहुत से लोग कहते हैं कि रीढ़ की हड्डी सीधी रखनी चाहिए, सिर सीधा रखना चाहिए, सिर झुकना नहीं चाहिए, इस तरह की तरह-तरह की बातें करते हैं। पत्री जी कहते हैं कि इन सबकी कोई आवश्यकता नहीं है। वे हमेशा यही कहते हैं, ''स्थिरसुखम आसनम''।

वे कहते हैं कि आप जिस भी आसन में स्थिर और सुखपूर्वक बैठ सकते हैं, कोई भी आसन चलेगा। अगर नीचे बैठना चाहें तो नीचे बैठ सकते हैं, पैर फैलाकर बैठना चाहें तो पैर फैलाकर बैठिए, कुर्सी पर बैठिए, सोफ़े पर बैठिए, बिस्तर पर बैठिए, कहीं भी बैठिए। लेकिन पौरों को क्रास करके, हाथों की उँगलियाँ आपस में फँसा लीजिए! यही पत्री जी कहा करते हैं। इस प्रकार आप बिल्कुल आराम से बैठ सकते हैं। यहाँ ''शिरीर'' का कोई जिक्र नहीं है।

ऐसे बैठकर आँखें बंद करते ही ''विचार'' आते हैं। तब आप उन विचारों को काट देते हैं।'' श्वास पर ध्यान'' लगाए रहते हैं। ऐसा रखते ही यह मन किसी और विचार में चला जाता है। उसे पहचानकर, काटकर फिर से श्वास पर ध्यान लगाना चाहिए। ऐसा करते रहते हैं, चाहे आप कितनी भी बार श्वास पर वापस आएँ, यह ''मन'' फिर से किसी और विचार में जाता रहता है। वह एक तरह से जैसा आप कहते हैं, वैसा नहीं सुनता, आपके नियंत्रण में नहीं रहता, बहुत कठिन होता है।

क्योंकि मन किसी भी विचार की ओर जा सकता है, लेकिन ''दुःख देने वाले'' विचारों की ओर ही जाता रहता है। वे सारी बातें याद आती रहती हैं। तब आप कैसे बैठ पाएँगे ? आपको बहुत परेशानी होगी। आँखें बंद करने का मन ही नहीं करेगा, बार-बार आँखें खोलते रहेंगे। मन हमेशा कोई-न-कोई ऐसा अर्जेंट काम बताता रहता है। लेकिन जैसे ही आँखें खोलते हैं, वही काम फिर उतना ज़रूरी नहीं लगता, अक्सर ऐसा ही होता है।

एक तरह से देखा जाए तो ऐसा लगता है कि ध्यान का मतलब मन को नियंत्रित करना ही है। जिस तरह एक बंदर एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर, एक डाल से दूसरी डाल पर लगातार कूदता रहता है, उसी तरह यह मन भी एक विचार से दूसरे विचार में, इधर-उधर, इधर-उधर डोलता रहता है। ऐसे मन को नियंत्रित करने के लिए किया जाने वाला प्रयास ही पत्री जी द्वारा बताया गया '' श्वास पर ध्यान'' ध्यान है।

इसलिए एक तरह से देखा जाए तो मन को नियंत्रित करना बहुत कठिन लगता है। लेकिन जो भी यह हासिल करता है, उन्होंने सब कुछ

हासिल कर लिया है। इसीलिए कहा जाता है कि "दुनिया को जीतने वाले से भी अपने मन को जीतने वाला महान होता है।"

पत्री जी हमें एक उदाहरण बताते रहते हैं। अलेक्जेंडर ने अनेक देशों को जीतकर सारी दौलत लूटकर रथों, हाथियों पर लादकर अपने राज्य के लिए प्रस्थान किया। रास्ते में एक देश में अलेक्जेंडर ने पूछा, यहाँ क्या विशेष बात है ? तब वहाँ के मंत्री और सैनिकों ने कहा, यहाँ एक महान व्यक्ति हैं, जिनके बारे में सब लोग बात करते रहते हैं। उन्होंने बोले, उन्हें लेकर आओ। तब मंत्रियों ने कहा, वे नहीं आएँगे। वे क्यों नहीं आएगा ? यह ज़ोर से पूछकर आखिर में वह खुद ही वहाँ चला गया।

उन्होंने पूछा, आख़िर तुममें ऐसी क्या महानता है ? तुम्हारे बारे में लोग तुम्हें बहुत महान बता रहे हैं। पहले तुम ही अपने बारे में बताओ। मैं इस पूरे संसार का सम्राट हूँ। उसने कहा, मैंने बहुत-से देशों को जीता है। मेरे पास बहुत बड़ी सेना है और अपार संपत्तियाँ हैं। उसने पूछा, उन सबका क्या करोगे ? उसने कहा, ये सब लेकर मैं अपने देश जाकर उनका सुख भोगूँगा।

तब उन्होंने कहा, पहले तुम अपने देश पहुँचो तो सही। वह आश्चर्यचकित हो गया। देखा तो अलेक्जेंडर बहुत व्याकुल, अशांत था। जिस डायोजनीज़ के पास कुछ भी नहीं था, वह बहुत शांत और आनंदित था। कारण यह था कि अलेक्जेंडर ने दुनिया को जीता था, लेकिन "डायोजनीज़ ने" अपने मन को जीत लिया था। इसीलिए कहा जाता है कि दुनिया को जीतने वाले से अपने मन को जीतने वाला ही महान होता है। जैसा डायोजनीज़ ने कहा था, अंततः अलेक्जेंडर अपने देश पहुँचने से

पहले ही बीमार पड़ गया और रास्ते में ही उसकी मृत्यु हो गई।

इसलिए हर व्यक्ति को यह समझना चाहिए कि अपने मन को नियंत्रित करना बहुत-बहुत कठिन है। इसीलिए ध्यान सभी को ''कठिन'' लगता है। यदि वास्तव में ध्यान करना बहुत आसान होता, तो हर कोई ध्यान में आ जाता। भोजन करना तो बहुत आसान है, लेकिन ध्यान करना बहुत कठिन है। ऐसा मन जब नियंत्रण में आए, अर्थात जब विचार रुक जाएँ, तभी आपको ध्यान से लाभ मिलते हैं। और अगर आप उस मन को नियंत्रित नहीं कर पाए, विचार रुकें नहीं, तो आप चाहे कितनी देर भी बैठें, वह ''व्यर्थ'' हो जाता है।

वही प्रयास आपको करना चाहिए। उसी प्रयास के एक भाग के रूप में ही पत्री जी ने हमें ''श्वास पर ध्यान'' का यह अभ्यास दिया है। इससे न केवल हज़ारों लोग, बल्कि लाखों लोग ही अपने मन को नियंत्रित कर पाए हैं। यह नए लोगों को बहुत कठिन ही लगता है। यह न तो वह है जो हम अभी कह रहे हैं, और न ही वह है जो हम अभी देख रहे हैं।

बहुत पहले पिछले युग में जब श्रीकृष्ण भगवान् भगवद्गीता का उपदेश दे रहे थे, तब उन्होंने अर्जुन से कहा था कि ''योगी'' बनो। उन्होंने कहा था, ध्यानयोगी बनो, अर्थात ध्यान करो। क्योंकि उन्होंने कहा कि सबसे महान ध्यान है, उससे बढ़कर कुछ भी नहीं है।

श्लो।। तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।

कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन।।(भ.गी.6-46)

ता :- ''हे अर्जुन! तपस्वी से योगी महान है, ज्ञानी से भी योगी महान है और कर्म करने वाले से भी योगी महान है। इसलिए योगी बनो,

अर्थात ध्यानयोगी बनो।''

''जप-तप'' करने वाले अर्थात जप करने वाले, शरीर को तपाकर कष्ट देने वाले तपस्वियों से भी, तथा केवल पुस्तक-ज्ञान या पांडित्य रखने वाले ज्ञानियों से भी, ध्यान करने वाला योगी ही श्रेष्ठ होता है। इसी प्रकार कर्म अर्थात नित्य-नैमित्तिक कर्म, संध्यावंदन, अनुष्ठान, सूर्य नमस्कार और इस प्रकार के सभी कर्म करने वालों से भी, तथा यज्ञ-याग आदि सभी कर्म करने वालों से भी, ध्यान करने वाला योगी ही श्रेष्ठ होता है। इसलिए, हे अर्जुन! तुम योगी ही बनो।

तब अर्जुन ने क्या पूछा? अर्थात उसने पूछा-

श्लो।। चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम ।। (भ.गी.6-34)

ता :- ''हे कृष्ण! मन बहुत चंचल है, बहुत क्षोभ पैदा करता है, बलवान है, दृढ़ भी है। ऐसे मन का निग्रह करना, वायु को दबाकर रखने जितना ही अत्यन्त कठिन है - ऐसा मैं मानता हूँ।''

बहुत कठिन है, ऐसा कहा। उसने कहा, जैसे ''वायु को'' नियंत्रित करना जितना कठिन है, वैसे ही ''मन को'' नियंत्रित करना भी उतना ही कठिन है।

तब श्रीकृष्ण ने इस प्रकार उत्तर दिया।

श्लो।। असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ।। (भ.गी.6-35)

ता:- हे महाबाहु अर्जुन! मन का निग्रह करना निश्चय ही कठिन है और वह चंचल भी है। इसमें कोई संदेह नहीं है। इसलिए अभ्यास के

द्वार, वैराग्य के द्वारा उस मन का निग्रह किया जा सकता है, ऐसा श्रीकृष्ण ने कहा।

''अभ्यास'' का अर्थ क्या है, यह तो पत्री जी हमें लगातार बताते ही रहते हैं। ''श्वास पर ध्यान'' रखते हुए प्रतिदिन ध्यान करना चाहिए। जितना अधिक समय संभव हो, उतना अधिक ध्यान करना चाहिए। जब भी खाली समय मिले, तब ध्यान करना चाहिए। इसी प्रकार यदि प्रतिदिन ध्यान करते रहें, तो निश्चित रूप से मन नियंत्रण में आ जाता है।

इसलिए यूँ ही एक बार बैठकर ध्यान करने से कोई लाभ नहीं होता। मन नियंत्रण में नहीं आता। लेकिन करते-करते मन निश्चित रूप से आ ही जाएगा, हासिल कर ही लेते हैं। बहुत-से योगियों ने हासिल किया है। आप हासिल क्यों नहीं कर सकते ? पत्री जी कहा करते हैं, ''यदि एक मनुष्य किसी एक चीज़ को हासिल कर सकता है, तो कोई भी मनुष्य उसे निश्चित रूप से हासिल कर सकता है।''

ऐसे ही जब इतने सारे लोगों ने हासिल किया है, तो आप इसे क्यों नहीं हासिल कर सकते ? यह समझना चाहिए कि इसे ''अभ्यास के द्वारा हासिल किया जा सकता है।'' निराश नहीं होना चाहिए, घबराने की कोई आवश्यकता नहीं है, विचार आते ही रहते हैं, इसलिए बिल्कुल भी दु:खी होने की आवश्यकता नहीं है। करते-करते वही नियंत्रण में आ जाता है। चाहे पत्थर कितना भी खुरदुरा क्यों न हो, घिसते-घिसते वह चिकना हो जाता है। उसी प्रकार मन भी ''श्वास पर ध्यान'' रखते-रखते धीरे-धीरे नियंत्रण में आ जाता है। यदि मनुष्य प्रयास करे, तो कुछ भी हासिल कर सकता है।

यह सब हमें जानना चाहिए। श्रीकृष्ण ने कहा कि अभ्यास करते रहना चाहिए, साथ ही वैराग्य भी रखना चाहिए। इसलिए यह समझना चाहिए कि यदि ध्यान अच्छी तरह से करना हो, मन को अपने नियंत्रण में लाना हो, तो यह ''वैराग्य'' भी आवश्यक ही है। वैराग्य का अर्थ सब कुछ छोड़ देना नहीं है, सब कुछ छोड़कर हिमालयों की ओर, आश्रमों की ओर या जंगलों की ओर चले जाना नहीं है।

वैराग्य का अर्थ ''सबके प्रति जो ममत्व है, उसे छोड़ देना।'' अर्थात संसार कर सकते हैं, संसार के सुखों का अनुभव कर सकते हैं, लेकिन संसार के प्रति जो ममत्व है, उसे छोड़ देना चाहिए। पति, पत्नी के साथ रह सकते हैं, लेकिन उनके प्रति जो ममत्व है, उसे छोड़ देना चाहिए। इसी प्रकार धन भी कमा सकते हैं, लेकिन उस धन के प्रति जो ममत्व है, उसे छोड़ देना चाहिए। अर्थात पत्नी हो, पति हो, बच्चों हों उनके साथ संसार करते हुए रहते हैं।

यदि उन्हें कुछ भी हो जाए, तो हमें विलाप करते हुए व्याकुल नहीं होना चाहिए। उनकी आवश्यकतानुसार सेवा कीजिए, उनकी ज़िम्मेदारी ले लीजिए, लेकिन रोते हुए नहीं बैठना चाहिए। अब मेरा जीवन व्यर्थ हो गया है, ऐसा नहीं सोचना चाहिए। अगर आप इस तरह दुःखी होते हैं, तो इसका मतलब है कि आपको ममत्व है। लेकिन उनके साथ रहते हुए भी, अगर उन्हें कुछ भी हो जाए, तो उसके बारे में दुःखी हुए बिना उनकी जो सेवा करनी चाहिए, वह करें तो तब यह माना जाएगा कि आपको ममत्व नहीं है।

इसी प्रकार धन के प्रति भी ममत्व नहीं होना चाहिए। जब धन के प्रति ममत्व नहीं होता, तब आप धर्मपूर्वक हासिल करते हैं। लेकिन यदि उसके प्रति ममत्व होता है, तो अधर्म से, अन्याय से, अवैध तरीकों से हासिल करते हैं। बाद में उसका परिणाम यह होता है कि आर्थिक रूप से अनेक संकटों में पड़ जाते हैं। और भी अधिक पीड़ा सहनी पड़ती है। वैराग्य का अर्थ है ममत्व का न होना। इसलिए उनके प्रति ममत्व छोड़ देना चाहिए।

जब ऐसा करते हैं, तब उनके लिए न गलतियाँ करते हैं, न पाप करते हैं। ऐसे काम करके भविष्य में अपने लिए कष्ट नहीं लाते। इसलिए यदि उन्हें कोई परेशानी आए, तो उनकी सहायता कीजिए। लेकिन उनकी परेशानी देखकर दुःखी नहीं होना चाहिए, उनके लिए गलतियाँ नहीं करनी चाहिए, धर्म से नहीं डिगना चाहिए। यदि आप इस प्रकार जीवन जीते हैं, तो ममत्व रहित हो जाते हैं।

तब निश्चित रूप से धर्मपूर्वक जीवन जीकर, जीवन में जो हासिल करना चाहिए, उसे हासिल कर लेते हैं। ऐसे वैराग्य से ही कोई भी अपने मन को अपने नियंत्रण में रख सकता है। यह जान लेना चाहिए कि ऐसे लोगों का ध्यान भी अच्छी तरह लग जाता है। श्रीकृष्ण ने ''अभ्यास, वैराग्य'' यूँ ही नहीं बताए। इसलिए इन्हें अच्छी तरह याद रखिए। ये दोनों ही महत्वपूर्ण हैं। भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने यह बात कही है, इसका अर्थ है कि यह अत्यंत महत्वपूर्ण है। तभी उन्होंने इस प्रकार बताया।

इसलिए निरंतर ''अभ्यास'' करना चाहिए, ''ममत्व'' के बिना रहना सीखना चाहिए। तब मन को नियंत्रित किया जा सकता है। इतना ही

नहीं भगवद्गीता में आगे यह भी कहा गया है कि मन को नियंत्रण में लाने के लिए ''मध्यम मार्ग'' अपनाना चाहिए। मध्यम मार्ग क्यों? क्योंकि इस ध्यान में अच्छी तरह से जमना हो, मन को नियंत्रण में लाना हो, तो यह अनिवार्य रूप से आवश्यक है।

बुद्ध ने भी यही सिखाया। किसी भी बात में अति अच्छी नहीं होती। चाहे आहार का विषय हो, व्यवहार का हो, नींद का हो या अंत में ध्यान का ही क्यों न हो, हर बात में मध्यम मार्ग अपनाना चाहिए, अर्थात युक्त रहना चाहिए। यही बात बुद्ध ने भी कही है। यही बात श्रीकृष्ण ने भी कही है।

श्लो।। युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ।।(भ.गी.6-17)

ता :- जो युक्त आहार लेने वाला, युक्त रूप से विहार करने वाला अर्थात अनुभव करने वाला, युक्त कर्म करने वाला, युक्त निद्रा वाला। इसी प्रकार अवबोधस्य का अर्थ दिव्य ज्ञान अर्थात एनलाइटेनमेंट ऐसा पत्री जी ने कहा। ऐसा ध्यानयोगी दुःख से बाहर निकल जाता है, ऐसा कहा गया है।

ऐसा व्यक्ति मन को नियंत्रित कर लेता है, अपार बुद्धि विकसित कर लेता है, ज्ञान को हासिल कर लेता है। सभी कर्मों को रहित कर लेता है। ऐसा व्यक्ति दुःखों से आसानी से बाहर निकल जाता है। इसलिए भगवद्गीता में जो कहा गया है, वह कोई साधारण बात नहीं है। पत्री जी उन्हीं बातों को चुनकर हमें बताते हैं। उन्होंने जो कहा है, वह निर्विवाद है, उसका आचरण करना ही चाहिए।

पीड़ा शरीर का ? या मन का ?

देखिए, जब शरीर पर कोई चोट लगती है, चाहे कोई कट जाए, छिल जाए या कोई चोट लग जाए, तब ओह... माँ... कहते हुए बहुत पीड़ा महसूस करते हैं। इतना ही नहीं शरीर के किसी भी भाग में दर्द होने पर लोग समझते हैं कि पीड़ा शरीर की है, लेकिन वास्तव में वह पीड़ा शरीर की नहीं, मन की होती है। यह बात बहुत से लोगों को पता नहीं होती।

देखिए हाथ जल गया, या चोट लग गई, या फिर हाथ कट गया। ऐसा होने पर बहुत पीड़ा महसूस करते हैं, अरे बाप रे, ओह माँ कहते रहते हैं ! स्वाभाविक रूप से, चोट शरीर पर लगी है, इसलिए लोग समझते हैं कि पीड़ा शरीर की है, लेकिन वास्तव में वह पीड़ा शरीर का नहीं, ''मन का है।''

इसलिए एक छोटा-सा उदाहरण देखते हैं। मान लीजिए किसी को बहुत तेज़ पेट दर्द हुआ। जब वह इस तरह पीड़ा से परेशान होता है, तब स्वाभाविक रूप से जान-पहचान वाले, करीबी लोग सांत्वना देने के लिए आते हैं। यह जानकर कि वह बहुत तेज़ दर्द से परेशान है, वे लोग पूछते हैं, क्या हुआ ? देखिए, तब तक वह दर्द सहन न कर पाने के कारण तड़प-तड़पकर छटपटा रहा होता है। लेकिन उसे सांत्वना देने आए लोगों को वह उस दर्द का कारण बताता है।

तब वह कहता है, अभी थोड़ी देर पहले तक तो सब ठीक था, लेकिन अचानक बहुत तेज़ दर्द शुरू हो गया। समझ में नहीं आ रहा कि क्या हो गया। वह कहता रहता है, मैंने यह दवा ली, वह दवा भी ली, लेकिन यह दर्द बिल्कुल भी कम नहीं हो रहा है। अगर आप गौर करें, तो

जब तक वह बातें करता रहता है, तब तक वह दर्द की शिकायत नहीं करता। लेकिन जैसे ही उसकी बातें ख़त्म होती हैं, वह फिर से कहने लगता है, अरे बाप रे! बहुत दर्द हो रहा है!

जब तक वह बातें करता रहा था, तब तक वह दर्द कहाँ गया? अगर दर्द वास्तव में शरीर का होता, तो वह हमेशा होना चाहिए था, है न? लेकिन जब तक वह बातें करता रहा, तब तक उसने दर्द की शिकायत नहीं की। कारण यह है कि उस समय उसका मन बातों की ओर चला गया था। यानी जब मन दूसरी बातों की ओर चला गया, तब उसे दर्द महसूस नहीं हुआ। जैसे ही वह बातें बंद करता है, वह फिर से "दर्द दर्द" कहने लगता है। इससे स्पष्ट रूप से पता चलता है कि यहाँ दर्द शरीर का नहीं, बल्कि मन का ही है।

इसी तरह यदि किसी के खाना बनाते समय उसके हाथ पर गरम तेल गिर जाए। जब वह खौलता हुआ तेल हाथ पर गिरता है, तो पूरा हाथ बुरी तरह जल जाता है, उस पर फफोले पड़ जाते हैं। तब असहनीय पीड़ा से हाय! अरे माँ! कहकर चिल्लाने लगता है। तब आसपास के लोग अस्पताल ले जाते हैं। तब डॉक्टर कुछ दवाइयाँ लिख देते हैं, घाव पर पट्टी बाँध देते हैं।

इसी तरह यदि किसी का पैर टूट जाए, हाथ टूट जाए, या उसे कहीं चोट लग जाए, तो उन्हें अस्पताल ले जाते हैं। अस्पताल ले जाएँ, तो वहाँ डॉक्टर कुछ दवाइयाँ लिख देते हैं, एक इंजेक्शन भी लगा देते हैं और घाव पर पट्टी बाँध देते हैं। चोट थोड़ी ज़्यादा हो, इसलिए डॉक्टर कहते हैं, इन्हें आज अस्पताल में ही रखिए, कल घर ले जाइए।

अगर हम गौर से देखें, तो अस्पताल में रखने के बाद यदि कुछ

भी होता है, तो करीबी लोगों को बताते हैं। करीबी लोग सांत्वना देने के लिए आकर और पूछते हैं, क्या हुआ? क्या हो गया? तब हाथ जलने वाली महिला बताती हैं। तेल में कुछ डालते समय गलती से वह फिसल गया, तेल उछलकर हाथ पर गिर गया, हाथ बुरी तरह जल गया। वह कहती हैं, मुझे बहुत पीड़ा हो रही है।

डॉक्टर साहब को फ़ोन किया, तो वहाँ वे अस्पताल में नहीं है, इसलिए दूसरे अस्पताल गए। वह दु:खी होकर बताती हैं, अस्पताल जाने के बाद उस डॉक्टर साहब ने पूरी तरह पट्टी बाँधकर लाया और इस तरह लिटा दिया। अगर हम गौर से देखें, तो जब तक वे वहाँ अपने दर्द के बारे में बताती रहती हैं, तब तक उन्हें दर्द का एहसास नहीं होता। लेकिन जैसे ही बताना समाप्त होता है, उन्हें फिर से दर्द होने लगता है। फिर वह कहती हैं, हाय! अरे माँ! अरे बाप रे! दर्द सहा नहीं जा रहा है। लेकिन जब तक वह बातें करती रहीं, तब तक वह दर्द कहाँ गया?

जब इतनी सहन न कर पाने जितनी, बर्दाश्त न कर पाने जितनी पीड़ा हो, तब बात करते समय, यानी जब बातें कर रहे होते हैं, मन बातों पर चला जाने की वजह से दर्द दिखाई नहीं दिया। लेकिन जैसे ही उसने बातें करना बंद किया, उसे फिर से दर्द महसूस होने लगा। अर्थात यहाँ यदि आप गौर से देखें, तो अगर दर्द वास्तव में शरीर का होता, तो वह हर समय बना रहता। लेकिन वह दर्द मन का था, जब मन बातों की ओर चला जाता है, तब दर्द महसूस नहीं हुआ।

इसी प्रकार जब किसी को इंजेक्शन देना पड़ता है, तब डॉक्टर साहब इंजेक्शन लगाते हुए उस मरीज को बातों में लगाते हैं। अगर लड़कियाँ, छोटी बच्चियाँ हों, तो डॉक्टर पूछते हैं, तुम क्या पढ़ रही हो? या फिर

अगर बड़ी लड़कियाँ हों, तो पूछते हैं, माँ, तुम्हारे कितने बच्चे हैं ? वे क्या करते रहते हैं ? इसी तरह डॉक्टर साहब पूछते रहते हैं, तो वे जवाब देते रहते हैं। इसी बीच डॉक्टर इंजेक्शन लगा देते हैं और कहते हैं, हो गया।

यदि यहाँ गौर से देखें, तो इंजेक्शन लगाते समय डॉक्टर ध्यान दूसरी बातों की ओर मोड़ देते हैं, बातों में उलझा देते हैं। जब वे इस तरह उन बातों में ओर चला जाता है, तब असली दर्द महसूस नहीं होता, उन्हें इंजेक्शन की पीड़ा भी महसूस नहीं होती। इसलिए वे उस पीड़ा का अनुभव नहीं करते हैं।

कुछ लोग तो बहुत ही समझदार होते हैं। उन्हें इंजेक्शन से बहुत डर लगता है। जब डॉक्टर उन्हें बातों में उलझाने की कोशिश करते हैं, तो वे तुरंत समझ जाते हैं कि डॉक्टर मुझे बातों में उलझाकर इंजेक्शन लगाना चाहते हैं। इसलिए उनका ध्यान उसी पर बना रहता है। उन्हें उस इंजेक्शन की पीड़ा महसूस होती है।

इसलिए हमें समझ लेना चाहिए कि दर्द शरीर का नहीं है। जब भी आपको कभी बहुत अधिक दर्द महसूस हो या शरीर में कोई पीड़ा हो, तो मन को श्वास की ओर मोड़ने का प्रयास कीजिए। अर्थात ध्यान श्वास पर रखिए। आप आसानी से बाहर निकल जाएँगे। अगर दर्द पर ही रहेंगे, तो आप सहन नहीं कर पाएँगे।

इसी प्रकार जब किसी का ऑपरेशन करते समय, चाहे गर्भ से बच्चे को निकाला जा रहा हो, या हृदय का ऑपरेशन हो, किडनी अथवा ब्रेन का ऑपरेशन हो, इस प्रकार के अन्य ऑपरेशन किए जा रहे हों, तब शरीर को चीरा जाता है। जब शरीर को चीरा जाता है, तो स्वाभाविक रूप

से उन्हें बेहोशी की दवा दी जाती है। बेहोशी की दवा देकर उन्हें बेहोशी की स्थिति तक ले जाते हैं। अर्थात उस स्थिति में मन काम नहीं करता। उन्हें मन के काम न करने की स्थिति तक ले जाते हैं। तब उसके शरीर को कैसे भी काटें, कितनी भी तरह से काटें, वह कुछ नहीं बोलता, वह पीड़ा भी नहीं सकता।

अगर बेहोशी उतर गई, तो वह फिर से दर्द कहता है। ऑपरेशन होने के बाद टाँके लगा देते हैं, सब कर देते हैं। फिर ले जाकर एक कमरे में लिटा देते हैं। बेहोशी उतरने के कारण वह कहता है, टाँके और ये सब बहुत दर्द कर रहे हैं, तकलीफ़ दे रहे हैं। लेकिन जब बेहोशी की दवा देते हैं, जब बेहोशी की स्थिति में चले गए, जब मन काम न करने की स्थिति में चल गया, तब कुछ भी नहीं हुआ।

यही हमें गौर करना चाहिए। अगर दर्द शरीर का होता, तो वह हमेशा रहता। बेहोशी की दवा देने पर दर्द क्यों नहीं था? शरीर को तो काट रहे थे न? जैसे चाहें वैसे काट रहे थे। अंदर से सब निकालकर फिर अंदर रखकर टाँके लगा रहे हैं। यह सब कर रहे हैं, फिर भी कुछ नहीं बोल रहा। अगर सचमुच दर्द शरीर का होता, तो होना चाहिए था न? क्यों नहीं था? क्योंकि दर्द मन का है। अर्थात हमें समझना चाहिए कि मन बेहोशी की स्थिति में था।

इसी तरह मान लीजिए कि जब मन जागरूक अवस्था में था, तब ऑपरेशन किया। बहुत ज़ोर से चिल्लाते हैं, तड़पते हैं, सहन नहीं कर पाते।

इससे हमें समझ में आता है कि पीड़ा मन का ही है, शरीर का नहीं। आप देखिए मुर्गियों को, बकरियों को, भेड़ों को, गायों को काटते

रहते हैं। बेहोशी की दवा नहीं देते, कुछ भी नहीं देते। साधारण रूप से काट देते हैं, मार देते हैं, देखिए वे कैसे तड़पती हैं! नीचे गिरकर कैसे रोती हैं, देखिए! मनुष्य को तो बेहोशी की दवा देकर काटते हैं, ऑपरेशन करते हैं। लेकिन जानवरों को तो ऐसे ही काट देते हैं। इसलिए वे छटपटाते रहते हैं।

इसीलिए पत्री जी कहते हैं। उन्हें इतनी पीड़ा क्यों पहुँचानी चाहिए? वह पाप हम क्यों करना चाहिए? ऐसा कहते हुए, ''जीव हिंसा मत कीजिए – मांसभक्षण छोड़ दीजिए'', कहते हैं। सिर्फ मांस के लिए ही उन्हें इस तरह मार रहे हैं, इसे छोड़ दीजिए, ऐसा कहते रहते हैं। जब बेहोशी की दवा नहीं दी जाती, तब आपका मन काम करता रहता है, तड़पते रहते हैं, मानो प्राण निकल जाने जितनी पीड़ा सहते रहते हैं।

इतना ही नहीं यदि हम कुछ और उदाहरण लें, तो यह भी समझ में आ जाता है कि पीड़ा वास्तव में शरीर का नहीं, बल्कि ''मन'' का है। दरअसल, मन ही इन्द्रियों के माध्यम से सब कुछ अनुभव करता है। बहुत से लोग सोचते हैं कि इंद्रियाँ अनुभव करती हैं। लेकिन इंद्रियों के माध्यम से मन ही सब कुछ अनुभव करता है। आँखें देखें, कान सुनें, मुँह बोले, हाथ–पैर काम करें, यह सब मन ही अनुभव करता है।

आमतौर पर लोग सोचते हैं कि आँखें देखती हैं, लेकिन अगर थोड़ा गौर करें, तो किसी महत्वपूर्ण विषय पर बात करते समय हम उसमें पूरी तरह से लीन हो जाते हैं। आस–पास से कोई इधर–उधर आता–जाता रहता है। यहाँ मन का पूरा ध्यान बातों पर होने के कारण, आपके पास से कौन गुज़रा, यह भी आपको पता नहीं चलता।

वास्तव में आपकी आँखें खुली ही रहती हैं, देखते ही रहे, फिर

भी आपके सामने से कौन गया, आपको पता नहीं चला। बाद में आप पूछते हैं, अरे, तुम कब गए ? तब वह कहता है, अरे, तुम तो वहीं थे ! अरे ! मैंने तो इतना ध्यान ही नहीं दिया। आँखें खुली होने पर भी ध्यान क्यों नहीं दिया ? क्योंकि उस समय मन किसी और चीज़ में लगा हुआ था। अर्थात आँखों के माध्यम से देखने वाला, सबको ग्रहण करने वाला भी मन ही है।

इसी प्रकार जब आप कोई बातें सुनते समय, या कोई प्रवचन सुनते समय, या फिर कक्षा में शिक्षक पाठ बताते समय, तब कान वहीं होते हैं और वे लगातार बोलते ही रहते हैं। लेकिन मान लीजिए कि आप घर की बातों के बारे में, बाज़ार की बातों के बारे में, बीती हुई घटनाओं के बारे में या व्यापार के विषय में सोच रहे हैं। वे क्या कह रहे हैं, यह भी आपको समझ में नहीं आता। फिर भी वे उसी बात को दोहराने पर भी समझ में नहीं आता। तब आप कहते हैं, फिर से बताइए। क्यों ? क्योंकि वहाँ ध्यान नहीं था। लेकिन जो मन को उसी पर केंद्रित करके सुनते रहते हैं, उन्हें समझ में आता है।

और आप देखिए, माताएँ छोटे बच्चों को खाना खिलाती रहती हैं। वह कहता है, मुझे यह पसंद नहीं है। मुझे नहीं चाहिए। मैं नहीं खाऊँगा। तब माँ कोई छोटी–सी कहानी सुनाती है।

राजा और सात मछलियों की कहानी, या दो बिल्लियों और बंदर की कहानी जैसी कोई–न–कोई कहानी सुनाती रहती है। बच्चों को कहानियाँ बहुत पसंद होती हैं। इसलिए जब माँ कहानी सुनाती है, तब वह अपना ध्यान उसी पर लगाकर हाँ, हाँ करता रहता है। वह हाँ, हाँ करता रहता है, और माँ एक–एक कौर खिलाती रहती है। उसका ध्यान कहानी में लगा रहता है। वह यह भी पता नहीं चलता कि वह खाना खा रहा है। वह

भूलकर खाता ही रहता है। थोड़ी देर बाद कहानी खत्म हो जाती है। कहानी खत्म होते ही उसका ध्यान फिर से खाने पर आ जाता है।

वह कहता है, माँ, तुमने मुझे कहानी में उलझाकर खाना खिला दिया। फिर वह मुझे नहीं चाहिए कहकर नखरे करने लगता है। यहाँ अगर आप ध्यान दें, तो जब उस बच्चे का मन कहानी की ओर मुड़ गया, तब उसे यह भी समझ में नहीं आया कि वह क्या कर रहा है। लेकिन जैसे ही उसका मन फिर से खाने की ओर मुड़ता है, वह अपनी सामान्य स्थिति में आ जाता है और फिर से नखरे करने लगता है। इसलिए यहाँ भी अगर आप ध्यान दें, तो समझ में आता है कि खाने वाला मन ही है, मुँह नहीं।

इसी प्रकार हम यह भी समझ सकते हैं कि स्पर्श करने वाली त्वचा नहीं है, बल्कि त्वचा के माध्यम से मन ही अनुभव करता है। इन सब बातों को ध्यान से देखें, तो यह भी समझ में आता है कि इच्छा भी मन के द्वारा ही होती है। इसलिए चाहे पति-पत्नी ही क्यों न हों, दरवाज़े बंद करके, जब उनका ध्यान उसी पर जाता है, तभी वे उस सुख का अनुभव कर पाते हैं। लेकिन यदि मन कहीं और लगा हो, तो उन्हें वह सुख बिल्कुल महसूस नहीं होता। इसलिए चाहे त्वचा हो, कान हों, आँखें हों, मुँह हो, जीभ हो या कोई भी हो, इन सभी के माध्यम से मन ही अनुभव करता है। इसी प्रकार ''शारीरिक पीड़ाएँ भी मन की होती हैं, शरीर की नहीं।''

इसी प्रकार अनेक परिस्थितियों में भी हम इस बात को देख सकते हैं। कोई अच्छा प्रवचन दे रहा है। जब वह बहुत रुचिकर लगता है, तब ध्यान पूरी तरह उसी पर केंद्रित हो जाता है, अर्थात जब हम मन लगाकर सुनते हैं, तब घंटों-घंटों का समय यूँ ही बीत जाता है। उस समय

में न भूख के बारे में, न प्यास के बारे में, पंखा है या नहीं ? या गर्मी लग रही है ? ये बातें प्रवचन सुनते समय तक पता नहीं चलतीं।

वह इस प्रकार धाराप्रवाह बोल रहा है, बहुत रुचिकर बातें बता रहा है, ऐसी बातें बता रहा है जो आपको पसंद हैं। इन सब बातों को सुनते-सुनते यह भी पता नहीं चलता कि कितनी देर तक बैठे रहे। लेकिन जैसे ही वे बोलना बंद करते हैं, तभी मन में आता है, अरे! एक घंटा हो गया क्या ? और तुरंत ही मन फिर इन बातों की ओर चला जाता है। तब भूख लगती है। तब तक उसे भूख का भी एहसास नहीं होता। जब इस तरह उस मन दूसरी ओर चला जाता है, तब उसे इन सबका कुछ भी पता नहीं चलता। मन उस पर जाता है, तो फिर से सब कुछ ग्रहण करता रहता है।

हम भीमवरम में पिछले 23 वर्षों से हर महीने की 1, 2, 3 तारीख़ को तीन दिनों तक कक्षाएँ आयोजिन कर रहे हैं। वहाँ हम उन कक्षाओं में रुचि पैदा करने वाले, आवश्यक, उनकी ज़रूरतों के अनुसार विषयों पर बात करते हैं, तो कभी-कभी उसी विषय पर बात करते-करते एक घंटा, डेढ़ घंटा या दो घंटे भी बीत जाते हैं। दो घंटे बीत जाने के बाद भी वे उसी तरह तल्लीन होकर सुनते रहते हैं।

वे बड़ी उत्सुकता से इंतज़ार करते रहते हैं, अब इसके बाद क्या बताएँगे ? अब आगे क्या कहेंगे ?। साथ ही, वे जो बातें सुनते हैं, उन्हें नोट भी करते रहते हैं। इस तरह एक घंटा, डेढ़ घंटा या दो घंटे भी यूँ ही आसानी से बीत जाते हैं। जब वह विषय समाप्त हो जाता है, तब वे आश्चर्य से कहते हैं, अरे! इतना समय हो गया ? क्या मैंने इतनी देर तक सुना ?

अगर स्वाभाविक रूप से गौर करें, तो जब कोई राजनेता भाषण

देता है, तब लोग दस मिनट भी नहीं बैठ पाते। लेकिन जब आपके जीवन से संबंधित रोचक और महत्वपूर्ण बातें बताई जा रही होती हैं, आप उनमें पूरी तरह लीन हो जाते हैं, तब आपको पता ही नहीं चलता कि कितने घंटे बीत गए। यह भी आपको पता नहीं चलता कि भोजन का समय कब निकल गया। उस समय ऊपर पंखा चल रहा है ? या नहीं ? आपको हवा लग रही है ? या नहीं ? इनकी भी कोई परवाह नहीं रहती। फिर जैसे ही ध्यान उसकी ओर जाता है, तब पता चलता है कि पंखा नहीं चल रहा है, घुटन हो रही है, प्यास लगी है या भूख लगी है, वे सब बाद में होते हैं।

इसलिए चाहे जो भी करें, यह याद रखना चाहिए कि सब के लिए मन ही प्रधान है। मन के द्वारा ही इन्द्रियाँ और शरीर, सब कुछ ग्रहण किया जा रहा है। शरीर के द्वारा जो कुछ भी ग्रहण किया जाता है, त्वचा के द्वारा जो कुछ भी ग्रहण किया जाता है, उसे मन ही ग्रहण करता है। यह समझना चाहिए कि आँखों के द्वारा तथा सभी ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा जो कुछ भी ग्रहण किया जाता है, उसे मन ही ग्रहण करता है।

इसी प्रकार काम-वासना से संबंधित इच्छाएँ भी मन की ही हैं, लेकिन शरीर की नहीं, ध्यान दें, तो समझ में आएगा। पति-पत्नी बड़ी इच्छा के साथ उस कमरे में दरवाज़ा बंद करके उस सुख का अनुभव करते रहते हैं, इसी बीच कोई दरवाज़ा खटखटाता है। चाहे कितनी ही इच्छा हो, एक बार डिस्टर्ब हो जाए तो मन फिर चला जाता है। मन जितनी देर उसी पर रहता है, उतनी देर तक ही आसक्ति होती है। मन जब उससे हट जाता है, तो अपने-आप उस इच्छा में आसक्ति कम हो जाती है।

इससे स्पष्ट रूप से समझ में आता है कि चाहे कष्ट हो, सुख हो, दुःख हो या खुशी, इन सबका अनुभव मन ही करता है, शरीर नहीं। अर्थात

यह समझ में आता है कि इन्द्रियों के माध्यम से सब कुछ अनुभव करने वाला मन ही है।

यह मन हमेशा सुख ही चाहता है, कष्ट को सहन नहीं कर सकता। इसीलिए आप भी थोड़ा-सा कष्ट आते ही उसे सहन नहीं कर पाते, व्याकुल हो जाते हैं। इस स्थिति से बाहर निकलना हो, कष्टों को सहन करना हो, तो मुख्य रूप से ''मन के महत्त्व को कम करना चाहिए।''

कठिनाइयाँ, पीड़ाएँ ये सब बहुत होती हैं। कभी-कभी सहन नहीं कर पाते हैं। यदि इस स्थिति से बाहर निकलना है, तो चूँकि इन सबका कारण मन ही है, इसलिए मन का महत्त्व कम करना चाहिए। कारण यह है कि किसी का भी शरीर मन के अधीन ही होता है। स्वाभाविक रूप से अभी शरीर काम करता हुआ दिखाई देता है, लेकिन काम करने वाला शरीर नहीं, बल्कि उससे काम करवाने वाला मन ही है। इसलिए यदि मन का महत्त्व कम कर दिया जाए, तो अपने-आप इन सबसे बाहर निकल सकते हैं।

ऐसा क्यों? क्योंकि मन जैसा कहता है, शरीर वैसा ही काम करता है। जब शरीर मन के अधीन होता है, तब मन को होने वाली पीड़ा ही शरीर के माध्यम से व्यक्त होती रहती है। हर व्यक्ति में ''शरीर, मन, आत्मा,'' ये तीनों होते हैं। अर्थात जब शरीर को मन के अधीन से हटाया जाता है, तब वह ''आत्मा के अधीन'' चला जाता है। तब मन के अधीन होने वाला शरीर, इन्द्रियाँ आत्मा के अधीन आ जाते हैं। जब शरीर आत्मा के अधीन होता है, तब चाहे कितने भी कष्ट, दुःख क्यों न आएँ, उन्हें पीड़ा नहीं कहते।

कारण यह है कि यहाँ शरीर को कोई पीड़ा नहीं होती, इसी तरह

आत्मा का मतलब कोई और नहीं है, बल्कि ''साक्षात भगवान ही हैं।'' इसलिए भगवान को कोई पीड़ा नहीं होती। ऐसी स्थिति में शरीर आत्मा के अधीन होता है, इसलिए चाहे कोई भी कष्ट आए, दु:खी नहीं होते। यहाँ हमें एक बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए, हम सब मनुष्य हैं। मानव का मतलब केवल शरीर ही नहीं है, बल्कि शरीर के साथ-साथ और भी दो हैं। वे मन, आत्मा हैं। शरीर तो दिखाई देता है, लेकिन मन दिखाई नहीं देता, आत्मा भी दिखाई नहीं देती।

स्वाभाविक रूप से यह शरीर मन के अधीन में होता है। मन जैसा कहता है, वैसे ही ये इन्द्रियाँ, शरीर ऐसा काम करते रहते हैं। इसलिए ये पीड़ाएँ मन को होती हैं। इसलिए शरीर को कोई भी तकलीफ़ होने पर उसे मन ही सहन नहीं कर पाता। बहुत पीड़ा व्यक्त करता रहता है।

इसी प्रकार आत्मा का मतलब कोई और नहीं, बल्कि साक्षात भगवान हैं। भगवान ही ईश्वर हैं, भगवान ही आत्मा हैं। मनुष्य का अर्थ है, शरीर, मन, भगवान। ये तीनों मिलकर ही मनुष्य हैं। भगवान के बिना मनुष्य नहीं है। भगवान के साथ ही मनुष्य है, दैव के साथ ही मनुष्य है।

बहुत से लोग सोचते हैं कि भगवान कहीं ऊपर के लोकों में होते हैं, मंदिरों में होते हैं या तीर्थस्थलों में होते हैं। नहीं, यह समझना चाहिए कि वही भगवान हर किसी में आत्मा के रूप में हैं। यदि यह बात समझ में आ जाए, तो आपका जीवन धन्य हो जाएगा।

पत्री जी से परिचय होने के बाद ही मुझे यह बात समझ में आई कि ''आत्मा ही भगवान है, आत्मा का कोई रूप नहीं होता, समस्त सृष्टि में व्याप्त है, पूरी सृष्टि उसी के आधार पर चल रही है, समस्त सृष्टि उसी के द्वारा संचालित हो रही है।''

इसीलिए आदि शंकराचार्य जी ने कहा है, ''देहो देवालयः प्रोक्तः, जीवो देवः सनातनः।'' अर्थात यह शरीर ही वास्तविक देवालय है। इस शरीर में रहने वाला जीव, अर्थात अंशात्मा ही भगवान हैं, इसे जानने के लिए कहा गया है। जहाँ भगवान होते हैं, वही ''देवालय है।'' भगवान इस शरीर में हैं, इसलिए ''यह शरीर ही देवालय है।''

यहाँ शरीर, मन और आत्मा, ये तीनों हैं। लेकिन स्वाभाविक रूप से आत्मा को आवृत करके मन है, अर्थात आत्मा होते हुए भी आत्मा का प्रभाव हो, महत्व हो इस शरीर में व्यक्त नहीं हो रहा है। क्यों? क्योंकि मन ने आत्मा को आवृत कर रखा है। इसीलिए यह शरीर मन के अनुसार ही काम करता है। मन जैसा कहता है, शरीर वैसा ही काम करता है। लेकिन मन में सभी प्रकार के अवलक्षण होते हैं। मन में आशा होती है, इच्छाएँ होती हैं, द्वेष होता है, ईर्ष्या होती है, ऐसे अनेक प्रकार होते हैं।

इसीलिए मन जितना मलिन होता है, उतने अवलक्षण होते हैं। मन जितना शुद्ध होता है, उतने अच्छे लक्षण होते हैं। इस प्रकार मन जैसा कहता है, वैसे ही यह शरीर, इन्द्रियाँ काम करती रहती हैं। यह मन पीड़ा सहन नहीं कर पाता। इसलिए शरीर को कुछ भी हो जाए या किसी भी प्रकार की पीड़ा पहुँचे, मनुष्य बहुत अधिक दुःखी हो जाता है। क्योंकि मन होने के कारण। यहाँ मन आपके द्वारा लिए जाने वाले आहार, किए जाने वाले व्यवहार के अनुसार होता है।

यदि मन शुद्ध होता है, तो मनुष्य के काम भी अच्छे होते हैं। यदि मन अशुद्ध होता है, तो मनुष्य के काम विपरीत होते हैं, सबको नुकसान पहुँचाने वाले होते हैं। इसीलिए यहाँ हमें यह याद रखना चाहिए कि ''भगवान, अर्थात आत्मा को कोई पीड़ा नहीं होती।'' आत्मा अर्थात भगवान

इन सब से परे है।

भगवद्गीता में कहा गया है कि आत्मा को न तो शस्त्र काट सकते हैं, न ही अग्नि जला सकती है, न ही जल भिगो सकता है। उन्हें और कौन सी पीड़ाएँ होती हैं ? वह इन सब से परे हैं, परे की अवस्था में होने वाला।

अर्थात आत्मा को कोई पीड़ा नहीं होती, सब कुछ मन का ही है। मन का ही होने के कारण, कोई भी कष्ट आने पर पीड़ा मानता रहता है। लेकिन जैसे-जैसे मन का महत्त्व कम होता जाता है, वैसे-वैसे वह पीड़ा भी बहुत कम होती जाती है। यहाँ जैसे-जैसे मन का महत्त्व कम होता जाता है, वैसे-वैसे ''आत्मा का महत्त्व बढ़ता है।'' अर्थात भगवान का महत्त्व बढ़ता है। इसीलिए कहा जाता है कि ''मन हो तो मनुष्य, मन न हो तो भगवान।''

जब इस शरीर में मन का महत्त्व होता है, तब मानव की तरह व्यवहार करता है, जैसे-जैसे मन का महत्त्व कम होता जाता है, वैसे-वैसे वही माधव की तरह व्यवहार करता है, वैसे ही कार्य करता रहता है। ऐसे लोगों को, अर्थात जिन्होंने मन का अतिक्रमण किया है, जिन्होंने मन पर विजय प्राप्त की है, जिन्होंने मन को शून्य कर लिया है, उन्हीं को ''देवता'' कहते रहते हैं। उन्होंने बहुत साधना करके, जीवन को अर्पित करके, उस स्थिति तक पहुँच गए। इसलिए वे देवता बन गए। इसी प्रकार जो भी साधना करेंगे, वे भी उसी तरह देवता बन जाएँगे।

इसलिए उस मन हो तो कोई भी कष्ट आने पर दु:खी होते हैं, मन न हो तो कोई भी कष्ट आने पर दु:खी नहीं होते। कारण यह है कि जब मन का महत्त्व कम होता है, तब आत्मा का महत्त्व बढ़ जाता है। आत्मा होने के कारण उन्हें कोई भी पीड़ा महसूस नहीं होती। पीड़ा का अनुभव

करने वाला मन ही है, स्वाद की इच्छा करने वाला भी मन ही है, शारीरिक वासना भी मन की ही होती है, देखने वाला भी मन ही है, सुनने वाला भी मन ही है, सब कुछ चाहने वाला भी मन ही है। दुःख हो या सुख, सब कुछ मन का ही है, शरीर का नहीं। इसलिए हमें यह जान लेना चाहिए कि सब कुछ अनुभव करने वाला मन ही है।

चलिए एक छोटा-सा उदाहरण देखते हैं। यदि आप कच्चे आम या इमली को देखते हैं, तो तुरंत मुँह में पानी आ जाता है, अर्थात लार निकलने लगती है। अगर ध्यान दें, तो वास्तव में इमली को देखने वाला कौन है? अर्थात "आँखें," लेकिन पानी कहाँ से निकला? अर्थात "मुँह से।"

यहाँ यदि आप ध्यान दें, तो देखा तो आँखों ने, लेकिन लार मुँह से निकली। क्या इस मुँह ने इमली को देखा था? नहीं, इसने नहीं देखा। चलो, आँखों ने देखा। तो क्या आँखों से लार निकली? नहीं, आँखों से लार नहीं निकली। आँखें देखती हैं, तो मुँह में पानी क्यों आता है? जिस मुँह में पानी आया, उसने नहीं देखा; और जिन आँखों में पानी नहीं आया, उन्होंने देख लिया। इसका कारण यह है कि वास्तव में देखा मन ने, इसी तरह उसके लिए मुँह से प्रतिक्रिया देने वाला मन ने ही दी।

इसलिए यह समझ लीजिए कि वास्तव में सभी अनुभव करने वाला मन ही है। यहाँ इन्द्रियों का कोई ज़िक्र नहीं है। यह समझना चाहिए कि वास्तव में सब कुछ मन का ही है। इसलिए यदि शरीर को मन के अधीन में रखा जाए, तो किसी को भी दुःख ही मिलेगा। जब कोई कहता है, मुझे बहुत पीड़ा हो रहा है, सहन नहीं कर पा रहा हूँ, मर जाने का मन कर रहा है, तो इसका अर्थ है कि वह मानसिक अवस्था में है। अर्थात

उसका शरीर मन के अधीन है। इसीलिए आप इतना दुःखी हो रहे हैं, सहन नहीं कर पा रहे हैं।

लेकिन यदि मन के अधीन होने वाले शरीर को मन के अधीन से निकालकर आत्मा के अधीन ले आएँ, तो आपके सब कुछ ''आनन्द ही आनन्द होगा।'' क्योंकि आत्मा के पास तो केवल ''आनन्द ही आनन्द है।'' उसके लिए पत्री जी द्वारा सिखाया गया ''श्वास पर ध्यान'' ध्यान के अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग नहीं है।

जो लोग इस ध्यान का विशेष रूप से अभ्यास करते हैं, उसके साथ-साथ सात्त्विक शाकाहारी भोजन ग्रहण करते हैं, तब धीरे-धीरे मन का महत्त्व पूरी तरह कम हो जाता है। उसी के लिए हम भीमवरम में तीन दिनों की कक्षाएँ आयोजित कर रहे हैं। कोई भी हो, यदि इन सब से बाहर निकलना चाहता है, तो मन का महत्त्व कम करना होगा।

उसके लिए घंटों-घंटों तक ध्यान की अवस्था में, अर्थात विचार-रहित अवस्था में, मन के कार्य न करने की अवस्था में रहना चाहिए।

जब कोई इस प्रकार घंटों-घंटों तक ध्यान में बैठा रहता है, तब धीरे-धीरे मन का महत्त्व कम होता जाता है। जैसे-जैसे मन का महत्त्व कम होता जाता है, वैसे-वैसे आत्मा का महत्त्व बढ़ता जाता है। अर्थात मनुष्य के लक्षण कम होते जाते हैं, ''दैवी लक्षण'' बढ़ते जाते हैं। वही व्यक्ति देवता की तरह व्यवहार करता है।

जब मन मलिन होता है, तब वही व्यक्ति दुष्ट, दुर्मार्गी, राक्षस, सैडिस्ट आदि बनकर अनेक प्रकार से व्यवहार करता है। मनुष्य देखने में तो सब एक जैसे होते हैं, लेकिन उनका व्यवहार उनके मन के अनुसार

होता है।

जब मन का महत्त्व पूरी तरह कम हो जाता है, तब मन ''जली हुई रस्सी के समान हो जाता है।'' देखिए जली हुई रस्सी से किसी चीज़ को बाँधा नहीं जा सकता, क्योंकि उसमें पकड़ नहीं रहती।

इसी प्रकार जब आत्मा का महत्त्व बढ़ जाता है , मन का महत्व पूरी तरह कम हो जाता है, तब मन होते हुए भी न होने के समान हो जाता है। जब आप उस अवस्था में होते हैं, तब आपको ज़रा भी दु:ख या पीड़ा नहीं होती।

यदि आप यहाँ ध्यान दें, तो इस संसार में दो प्रकार के लोग हैं - भोगी, योगी। ''भोगी'' अर्थात भोगों की इच्छा करने वाले, अर्थात सुखों की इच्छा करने वाले। भोगियों का शरीर मन के अधीन होता है। इसी प्रकार ''योगी'' अर्थात वे, जिन्होंने अपने मन को पूर्णत: शून्य कर लिया है, अर्थात उसे जली हुई रस्सी के समान बना लिया है। उनका शरीर ''आत्मा'' के अधीन होता है।

इसलिए उनके शरीर को पीड़ा होने पर भी वे दु:खी नहीं होते। एक प्रकार से देखें, तो वास्तव में शरीर की पीड़ाएँ भोगी और योगी के लिए एक ही हैं। यदि शरीर को चोट लग जाए, तो भोगी को भी, योगी को भी एक ही है। लेकिन भोगी दु:ख करता है, योगी दु:ख नहीं करता। यही दोनों के बीच का अंतर है।

इसीलिए देखिए, योगी ''रमण महर्षि'' के हाथ में कैंसर का घाव होने पर भी वे सामान्य ही रहे।

इसी प्रकार जब ''यीशु'' मसीह को सूली पर चढ़ाया गया, तब

उनके हाथों और पैरों में कीलें ठोकी दी गईं। लेकिन उन्होंने न रोए, न ही दु:खी हुए। इतना ही नहीं, बल्कि कीलें ठोकने वालों को क्षमा करने के लिए उन्होंने अपने पिता से प्रार्थना की।

कारण यह है कि वे योगेश्वर थे, मन को जली हुई रस्सी के समान बना लिया था, अर्थात शून्य कर लिया था। उन्होंने शरीर में मन को महत्त्वहीन बना लिया था। इसलिए उन्हें कितना भी कष्ट आया, उन्हें वह कष्ट जैसा नहीं लगा।

इसी प्रकार श्रीरामचन्द्र जी ने इतने वर्षों का वनवास किया, फिर भी उसे कोई गिनती में नहीं लिया। कारण यह है कि उन्हें वे सब कष्ट जैसे लगे ही नहीं।

इन सभी बातों को याद रखिए और '' श्वास पर ध्यान '' के माध्यम से मन का महत्त्व कम कीजिए। तब आप अपने जीवन में आनन्दपूर्वक रह सकेंगे। ऐसे लोगों को मन पर विजय प्राप्त करने वाले ''महात्मा'' कहते हैं।

''मानव के विभिन्न प्रकार के व्यवहारों का कारण - मन ही है''

संसार में सब मानव ही हैं, लेकिन एक के व्यवहार का दूसरे के व्यवहार से कोई संबंध नहीं होता। अलग-अलग प्रकार के होते हैं। उसका मुख्य कारण उनका मन ही है। अर्थात मनुष्य का व्यवहार मन के अनुसार ही होता है।

कारण यह है कि मन जैसा कहता है, इन्द्रियाँ, शरीर भी वैसा ही काम करते हैं। ऊपर से देखने पर ऐसा लगता है कि काम शरीर कर रहा है, लेकिन वास्तव में करवाने वाला मन ही है।

मन कुछ लोगों से अच्छा, कुछ लोगों से बुरा, कुछ लोगों से दुष्टतापूर्वक, कुछ लोगों से धोखापूर्वक, कुछ लोगों से स्वार्थपूर्वक, कुछ लोगों से निःस्वार्थ भाव से, कुछ लोगों से राक्षस की तरह व्यवहार करवाता है। इस प्रकार मन मनुष्यों से तरह-तरह का व्यवहार करवाता रहता है।

लेकिन यदि हम यहाँ ध्यान दें, तो मानव का जीवन उसके किए हुए कर्मों के अनुसार होता है। यदि अच्छे काम करता है, तो जीवन अच्छा होता है। यदि बुरे काम करता है, तो जीवन कष्टों से भर जाता है। अर्थात मानव को सुख मिले या दुःख मिले उसका कारण मन ही है, ऐसा कहा जा सकता है।

इसीलिए इस विषय में ''अमृतबिन्दु उपनिषद्'' में कहा गया है ''मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।'' मनुष्यों में मन ही बन्धन का अर्थात दुःख का, मोक्ष का अर्थात भोग का कारण है।

इतना ही नहीं आगे यह भी कहा गया है, ''बन्धाय विषयासक्तं

मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम।'' अर्थात ''विषयों में आसक्त चित्त बन्धन को प्राप्त करता है, और विषय-चिन्तन से रहित चित्त मुक्ति को प्राप्त करता है।ऱ्ऱ ऐसा अमृतबिन्दु उपनिषद् में कहा गया है।

सांसारिक विषयों में आसक्त मन दु:ख उत्पन्न करता है। बंधन का अर्थ है कि जो लोग ऐसे काम करते रहते हैं, जिनसे दु:ख उत्पन्न होता है, वे बार-बार जन्म लेकर इस पृथ्वी पर आते रहते हैं। इसलिए वे इस धरती पर बंधे रहते हैं।

इसी प्रकार जिनके मन में विषय-चिंतन नहीं होता, जिनकी किसी भी चीज़ में आसक्ति नहीं होती, उन्हें मुक्ति प्राप्त होती है। ऐसा अमृतबिन्दु उपनिषद् में कहा गया है। अर्थात मनुष्य के बंधन, अर्थात दु:ख के लिए, मोक्ष, अर्थात आनंद के लिए मन ही कारण है, ऐसा कहा गया है।

हर व्यक्ति का मन अलग-अलग प्रकार से क्यों व्यवहार करता है? ऐसा व्यवहार क्यों कठिनाएं लाते हैं? फिर जब वास्तव में कष्ट आते हैं, तब हमें पीड़ा का अनुभव भी मन ही कराता है, है न?

इसी प्रकार इन सबके प्रति आसक्ति उत्पन्न करने वाला भी मन ही है। ये गलतियाँ करवाने वाला भी मन ही है, ये पाप करवाने वाला भी मन ही है। जब कठिनाइयाँ आती हैं, तब फिर से दु:ख पहुँचाने वाला भी मन ही होता है। तो फिर मन ऐसे बुरे कर्म क्यों करवाता है? मन हमसे पाप क्यों करवाता है? अच्छा ही करवा सकता है न? फिर ऐसा क्यों नहीं करवाता? विचार करने पर पता चलता है कि इस प्रकार व्यवहार करने का कारण ''उसके गुण हैं।''

मानवों में मन के गुण चार प्रकार के होते हैं।

1. तमोगुण, 2. रजोगुण, 3. सात्त्विक गुण, 4. निर्गुण

मन के गुणों के अनुसार मन ही मनुष्य से तरह-तरह के काम करवाता है। यदि मन तमोगुण या रजोगुण में हो, तो वही मन मनुष्य से गलतियाँ, पाप करवाता है। जो काम नहीं करने चाहिए, वही करवाती है। अंत में उनका फल कष्टों के रूप में उसी मन ही अनुभव करना पड़ता है।

इसी प्रकार भगवद्गीता में बताया गया है कि ''तमोगुण में'' रहने वाले लोगों का व्यवहार, उनके लक्षण कैसे होते हैं।

स्लो।। अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च।

तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन।। (भ.गी.14-13)

ता :- ''हे कुरुवंशी अर्जुना! जब तमोगुण बढ़ता है, तब मानवों में अविवेक (बुद्धि की मंदता), आलस्य, प्रमाद (लापरवाही), अज्ञान अर्थात मूढ़ता उत्पन्न होती है, ऐसा कहा गया है।''

जब तमोगुण बढ़ता है, तब मानवों में अविवेक अर्थात विवेक का नाश हो जाता है। बुद्धि की मंद पड़ जाती है, अर्थात उनकी बुद्धि बहुत मंद हो जाती है, बहुत आलस्य करते रहते हैं। असावधानी के कारण किसी भी बात पर उचित ध्यान नहीं दे पाते। इसी प्रकार अज्ञान का अर्थ मूढ़ता है। इस मूढ़ता के कारण सभी जो करते हैं, वही करते हैं, सोचने का भाव नहीं होता। ऐसी बातें होती रहती हैं।

इसलिए आइए हम एक बार तमोगुण के लक्षणों को जान लेते हैं। ''मोह, अज्ञान, मूर्खता, आलस्य, अतिनिद्रा, दुर्घटनाएँ, मद्यपान, मांसाहार, पशुबलि, जात्राएँ, हठ कर्तव्य कर्मों को भूलना।'' ये सभी भी तमोगुण के लक्षण हैं।

तमोगुण में होने वाले लोग इस प्रकार के लक्षणों के साथ होते हैं।

* मोह का अर्थ है व्यामोह, अत्यधिक व्यामोह। अपने लोगों के

प्रति, धन के प्रति, अपने पद आदि के प्रति मोह होता है।

* इसी प्रकार मूढ़ता, अज्ञान तथा मूर्खता भी होती है। अर्थात मेरे पकड़े हुए खरगोश के तो तीन ही पैर हैं। और कोई कुछ भी कहे, वह नहीं सुनता। उसे जो सही लगता है, उसी को सही मानता है।

* इसी प्रकार आलस्य अर्थात सुस्ती। कोई भी काम करने का मन नहीं करता। हर समय खाना-पीना और अतिनिद्रा। और क्या है, सोना? ऐसी लापरवाही के कारण क्या होता है? कुछ दुर्घटनाएँ भी हो सकती हैं।

* इसी प्रकार मद्यपान का अर्थ है शराब का अधिक सेवन करना। मांसाहार खाते रहते हैं।

* वे समझते हैं कि पशुबलि गलत नहीं है। वे जात्राओं में जाते हैं, वहाँ पशुओं की बलि देते हैं और उनका मांस खाते हैं। ऐसे कार्य करते रहते हैं। ज़िद्दी होने के कारण वे किसी की बात नहीं सुनते।

* इसी तरह, करने योग्य सभी कर्मों को भूलते रहते हैं।

इसी प्रकार भगवद्गीता में बताया गया है कि ''रजोगुण में'' होने वाले लोगों के लक्षण कैसे होते हैं।

श्लो।। लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा।

रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ।। (भ.गी.14-12)

ता :- ''हे भरतवंशी अर्जुना! जब रजोगुण की वृद्धि होती है, तब मानवों में लोभ, निषिद्ध कर्म करने की प्रवृत्ति, मन की अशांति तथा आशाएँ उत्पन्न होती रहती हैं।

* रजोगुण विकसित होने पर मानव में लोभ का भाव, यानी कंजूसी होती है।

* शास्त्रों में जिन-जिन कर्मों का निषेध किया गया है, वही करते

रहते हैं। जिन कर्मों को करने का मना किया गया है, वही करते रहते हैं।

* इन सबको करने की वजह से कठिनाइयाँ आती हैं, समस्याएँ आती हैं, मन की शांति नहीं रहती।

* इन सबके अलावा आशा, जो भी देखता है, हर चीज़ के प्रति आशा, संपत्ति, पद आदि इन सभी के प्रति आशा बनी रहती है। इसलिए, एक तरह से रजोगुण के लक्षण कैसे होते हैं, एक बार देखते हैं।

* मोह (अत्यधिक मोह), लोभ (कंजूसी)।

* अहंकार अर्थात घमंड। रजोगुण में यह बहुत अधिक होता है।

* ममत्व अर्थात अपने लोगों के प्रति अत्यधिक मोह, दूसरों के प्रति द्वेषभाव।

* स्वार्थ बहुत अधिक होता है।

* दंभ का अर्थ है अपनी ही बढ़-चढ़कर डींगें हाँकते रहते हैं।

* राग का अर्थ है अपने लोगों के प्रति अनुराग होता है।

* भोग का अर्थ है विषय-भोग। इन सांसारिक विषयों और सुखों के प्रति रुचि होती है।

सुख-दुःख होते हैं। इससे सुख भी होता है और दुःख भी होता है। कड़ी मेहनत करने की वजह से कुछ सुख मिलते हैं। जो काम नहीं करने चाहिए, उन्हें करने से दुःख भी होता रहता है।

इसलिए जब दुःख आता है, ऐसी समस्याएँ सामने आती हैं, तब अशांति का शिकार हो जाते हैं। इसी प्रकार फलापेक्षा अर्थात अपने किए हुए कार्यों का फल मिलना चाहिए, ऐसी अपेक्षा भी होती है।

इस प्रकार अत्यधिक इच्छाएँ होती हैं। चंचलता के कारण मन स्थिर नहीं रहता। अभी एक बात बोलते हैं, थोड़ी देर बाद दूसरी तरह की

बातें करते हैं। इसी प्रकार मांसाहार, हिंसा से भी नहीं हिचकिचाते। मांस नहीं खाना चाहिए, ऐसा कहने पर भी वे नहीं छोड़ते। ये सब रजोगुण के लक्षण हैं।

इसी प्रकार सात्त्विक गुण में रहने वाले व्यक्तियों में इस प्रकार के लक्षण होते हैं। ऐसा भगवान श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता में बताया है।

यदि मन ''सात्त्विक गुण में'' होता है, तो वह मनुष्य से न तो गलतियाँ करवाता है, न ही पाप करवाता है।

जिस मन में सात्त्विक गुण होता है, वह मन न तो गलतियाँ करवाता है, न ही पाप करवाता है। वह केवल अच्छे कार्य ही करवाता है, सेवाएँ करवाता है। मनुष्य को सभी लाभ ही प्राप्त करवाता है, कोई नुकसान नहीं होता।

ऐसा मनुष्य सुख और खुशी के साथ जीवन जी सकता है। इसलिए किसी का भी जीवन अच्छा होना है, तो सबसे पहले सात्त्विक गुण में आना चाहिए। सात्त्विक गुण में आना अर्थात मन को शुद्ध करना।

अब आइए, एक बार देखते हैं कि जिन लोगों में सात्त्विक गुण होता है, उनके लक्षण कैसे होते हैं और भगवद्गीता में उनके बारे में क्या **बताया गया है।**

श्लो।। सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन् प्रकाश उपजायते।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद् विवृद्धं सत्त्वमित्युत।।(भ.गी.14-11)

ता।। ''जब सत्त्वगुण विकसित होता है और बढ़ता है, तब मनुष्य के सभी कार्य सात्त्विक रूप से, धीरे-धीरे, कोमलता से, शांतिपूर्वक तथा प्रकाशमय ढंग से अर्थात बुद्धिमानी से और ज्ञानपूर्वक होते हैं।''

यदि बुद्धि होती है, तो जो करना चाहिए वही करता है और जो

नहीं करना चाहिए, वह नहीं करता। वे ज्ञानपूर्ण होते हैं।

जब मनुष्य सत्त्वगुण में आता है, तब ''बुद्धि'' विकसित होती रहती है। शुद्ध सात्त्विक अवस्था में ''ज्ञान'' भी प्राप्त होता रहता है।

इन सात्त्विक गुणों के लक्षणों के बारे में क्या बताया गया है ?

* ''फल की अपेक्षा के बिना रहना।'' फलापेक्षा का अर्थ है, कोई भी कार्य करने पर उसके बदले में कोई फल मिलना चाहिए, ऐसी अपेक्षा नहीं होती।

जो लोग सात्त्विक गुण में आ जाते हैं, वे फल के बारे में नहीं सोचते। वे सोचते हैं कि जो करना चाहिए, वही करना है; उसके बाद जो भी फल मिलेगा, उसे स्वीकार करेंगे।

* इस प्रकार सुख भी मिलता है। क्योंकि जब समस्याएँ नहीं होतीं, रोग नहीं होते, निश्चित रूप से सभी के लिए अच्छे कार्य करते रहते हैं, तो उसके परिणामस्वरूप उन्हें भोग प्राप्त होते हैं, अर्थात सुखपूर्वक जीवन जीते हैं।

* ''विवेक'' भी उत्पन्न होता है यानी क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए, क्या अच्छा है और क्या बुरा, क्या धर्म है और क्या अधर्म, क्या न्याय है और क्या अन्याय, तथा क्या सत्य है और क्या असत्य है, इन सभी बातों की कुछ समझ होने लगती है।

जब पता चल गया, विवेक उत्पन्न हो गया, तभी तुरंत जो नहीं करना चाहिए उसे छोड़ देते हैं, जो करना चाहिए उसे करते हैं। फिर स्वाभाविक रूप से भविष्य बहुत अच्छा रहेगा।

* इस सात्त्विक गुण में ज्ञान के प्रति रुचि होती है। ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, ज्ञान अर्जित करना चाहिए, ऐसा सोचते हुए उनका मन

आत्मज्ञान की ओर ही आकर्षित रहता है। जैसे-जैसे ज्ञान के प्रति रुचि बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे आत्मा के बारे में जानना चाहते हैं, आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं।

* ''अंत:करण शुद्ध हो जाता है।''

* ''ब्रह्मचर्य'' का अर्थ है ब्रह्म में विचरण करना। ब्रह्म पर अर्थात आत्मा पर आसक्ति होती है।

* ''स्वाध्याय'' का अर्थ है, सात्त्विक गुण में रहते हुए पुस्तकें अच्छी तरह पढ़ते हैं। पुस्तकें खरीदते रहते हैं।

* शांत (यूँ ही आवेश में नहीं आते।)

* गर्व नहीं करते।

* अहंकार नहीं करते।

* अहिंसा का पालन करते हैं, हिंसा छोड़ देते हैं।

* निराडंबरता होती है, डींगें नहीं हाँकते।

ये सभी भी सात्त्विक गुणों के लक्षण हैं।

इन तीनों गुणों में होने वाले लोगों का व्यवहार कैसा होता है ? कैसे परिणाम होते हैं ? वे किस प्रकार का व्यवहार करते हैं ? किस प्रकार के कर्म करते हैं ? उनमें किस प्रकार के लक्षण होते हैं ? इन सभी बातों को भी हमने जान लिया है।

ऐसे गुणों के होने पर किस प्रकार के परिणाम मिलते हैं, यह भी भगवान श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता में बताया है।

श्लो।। कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम।

रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम।। (भ.गी.14-16)

ता :- ''सात्त्विक कर्मों का'' फल ''निर्मल सुख है'' अर्थात

सात्त्विक गुण में रहकर, सात्त्विक अवस्था में रहकर किए जाने वाले कर्मों से वे निर्मल सुख प्राप्त करते हैं। सुख क्यों प्राप्त करते हैं ? क्योंकि जो कर्म वे करते हैं, वे अच्छे होते हैं, इसलिए उन्हें अच्छे फल प्राप्त होते हैं, भोग भी प्राप्त होते हैं। इसलिए वे सुख का अनुभव करते हैं।

इसी प्रकार भगवद्गीता में बताया गया है कि ''रजोगुण'' से संबंधित कर्मों का फल ''दुःख'' है। अर्थात रजोगुण में रहकर किए जाने वाले कर्मों का फल ''दुःख'' है। क्योंकि जो नहीं करने चाहिए, वही करते हैं, अधर्मयुक्त व्यवहार करते हैं। इस प्रकार कर्म करने के कारण अंत में उसका फल दुःख होता है।

इसी प्रकार तमोगुण में रहकर किए जाने वाले कर्मों का फल ''अज्ञान है।'' अर्थात उसका फल अत्यधिक दुःख है, ऐसा स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है। क्योंकि अज्ञान में रहने पर सभी ऐसे ही काम करते हैं, जो नहीं करने चाहिए। जानते हुए भी गलतियाँ करते हैं। उनके परिणामस्वरूप दुःख का अनुभव करते हैं।

गवद्गीता में क्या बताया गया है ?

श्लो।। सत्त्वात्सञ्जायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च।

प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च।। (भ.गी.14-17)

ता :- सत्त्वगुण से ज्ञान, रजोगुण से लोभ, तमोगुण से असावधानी, भ्रम, अज्ञान उत्पन्न होते हैं।

इसलिए तमोगुण में अज्ञान होता है। इसी प्रकार रजोगुण में लोभ होता है। वहीं सत्त्वगुण में ज्ञान का उदय होता है। सत्त्वगुण में आते ही ज्ञान प्राप्त करने की आसक्ति ही नहीं होती, बल्कि उस ज्ञान को भी हासिल करते रहते हैं।

आइए, अब जानें कि इन तीनों गुणों के बारे में भगवद्गीता में और क्या बताया गया है।

जिन लोगों में ये गुण होते हैं, उनकी मृत्यु के बाद क्या होता है ? क्योंकि आपके लिए केवल यही जीवन नहीं है, मृत्यु के बाद भी जीवन है, आप आगे भी रहते हैं। क्योंकि आप शरीर नहीं हैं, आप आत्मा हैं। पत्री जी हमें यह बात हर समय याद दिलाते रहते हैं।" "You are not bodies, you are souls" कहते हैं। वे कहते रहते हैं कि आप शरीर नहीं हैं, आप आत्माएँ हैं। आत्मा स्वरूप आप इस शरीर में केवल कुछ ही दिनों तक रहते हैं। उसके बाद इस शरीर को छोड़ देते हैं।

जब इस शरीर को छोड़ देते हैं, तब ऊपर के लोकों में जाएँगे। ऊपरी लोकों में जाने पर हमें श्रेष्ठ लोकों, उच्च लोकों में पहुँचना चाहिए। लेकिन यदि हम नीचे के लोकों अर्थात अधोलोकों में पहुँचते हैं, तो हम ही नुकसान उठाएँगे।

इसलिए, हमें यह जानना चाहिए कि किस गुण में होने पर मृत्यु के बाद क्या होता है। यूँ ही उस लाभ के लिए, इस लाभ के लिए ध्यान नहीं करना चाहिए। सबसे पहले गुण बदलने के लिए ध्यान करना चाहिए। दृढ़ संकल्प के साथ ध्यान करना चाहिए, गुण बदलना चाहिए।

श्लो।। ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः।। (भ.गी.14-18)

ता :- जिनमें सत्त्वगुण होता है, वे मृत्यु के बाद ऊर्ध्वलोकों में जाते हैं। इसी प्रकार जिनमें रजोगुण होता है, वे मध्य लोकों में जाते हैं, जिनमें तमोगुण होता है, वे अधोलोकों में जाते हैं।

यदि सत्त्वगुण वाले लोग मरते हैं, तो मृत्यु के बाद ऊर्ध्वलोकों

में जाते हैं। अर्थात जो लोग सत्त्वगुण में होने पर देह का त्याग करते हैं, वे ऊर्ध्वलोकों को पहुँचते हैं।

वास्तव में, इन ऊर्ध्वलोकों को प्राप्त करने के लिए हिन्दू धर्म में कर्मकाण्ड किए जाते हैं, पिंडदान किया जाता है, दान किए जाते हैं। ये सब करते रहते हैं। किसलिए? ऊर्ध्वलोकों को पहुँचने के लिए।

इसलिए गुण को बदल सकने वाली, बदलने वाली एक ध्यान साधना से ही है। जो लोग सात्त्विक शाकाहार ग्रहण करते हुए ध्यान करते हैं, उनका गुण निश्चित रूप से बदलता है। वास्तव में, इस जन्म में मोक्ष प्राप्त करना भी आवश्यक नहीं है। सत्त्वगुण में आकर यदि शरीर का त्याग भी कर दें, तो भी अनंत लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

पत्री जी कहा करते हैं कि एक तमोगुण से रजोगुण बदलना हो, तो स्वाभाविक रूप से कोई प्रयास न करे, तो उसे 100 से 150 जन्म लग जाते हैं। इसी प्रकार रजोगुण से सत्त्वगुण में आना हो तो और 100 से 150 जन्म लेने पड़ते हैं।

यह बात पत्री जी ने अनेक अवसरों पर कही है। अर्थात कितने जन्म लेने पड़ते हैं। अनेक जन्मों में अनेक प्रकार की पीड़ाएँ अनुभव करनी पड़ती हैं। इससे हमें समझना चाहिए कि सत्त्वगुण में आकर जीवन को सही तरीके से चलाने के लिए कितनी पीड़ाएँ सहनी पड़ती हैं।

इसलिए ''पत्री जी कहते हैं कि ऐसे प्रयास के बिना, इतने जन्मों की आवश्यकता के बिना, यदि कुछ महीनों तक गहन साधना करे, तो वह निश्चित रूप से सत्त्वगुण में आ जाता है। मैं तीन दिन की कक्षा में आने वाले सभी लोगों से यही कहता हूँ।''

आपको अनुभवों की आवश्यकता नहीं है, लाभों की भी

आवश्यकता नहीं है। पहले आप अपनी बुद्धि का थोड़ा उपयोग करके सात्त्विक गुण में आने का प्रयास कीजिए। फिर आपको अपनी ज़िंदगी की भी चिंता करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। तब से वही गुण आपको मार्गदर्शन करेगा, सही मार्ग पर चलाएगा।

आपको जैसे जीवन जीना चाहिए, वैसे ही जीवन जीएँगे, जो करना चाहिए, वही करेंगे। वही गुण आपको सही मार्ग पर चलाएगा। सारा रहस्य यहीं है, कहीं और नहीं। यूँ ही लोग कहते रहते हैं कि वो आएँगी, ये आएँगी, इन चक्रों, एक्टिवेशन जैसी इन सब बातों को केवल कहने के लिए, लेकिन गुण नहीं बदलता तो, उन्हें कितना भी देखें, कुछ भी करें, कोई फायदा नहीं है।

सिर्फ़ यह सोचने से कि वह बदल जाएगा, ये सब बदल जाएँगे, उन्हें कर लेने से नहीं। बस अपने गुण को बदल लीजिए, सब कुछ सही हो जाएगा। मनुष्य का सारा काम उसके गुणों में ही है। वही गुण बदलना चाहिए। प्रकृति में होने वाला गुणों के अनुसार ही मनुष्य का व्यवहार निर्भर करता है। मनुष्य के भविष्य उसके व्यवहार के अनुसार ही निर्मित होता है।

अगर आपका जीवन सही होना है, तो आपके काम सही होने चाहिए। यदि आपके काम सही होने हैं, तो आपका गुण सही होना चाहिए। यदि आपका गुण सही होना है, तो आपको अपने मन को शुद्ध करना होगा। इससे बड़ा और कुछ नहीं है।

इसीलिए मैं यही कहता हूँ कि कम से कम तीन महीने लगातार भीमवरम आइए। क्योंकि जब एक महीने आते हैं, दो-तीन घंटे तक आसानी से बैठ पाते हैं। यदि वे घर जाकर अभ्यास को जारी रख सकें, तो निश्चित

रूप से कुछ महीनों तक करने पर परिवर्तन आ जाएगा।

लेकिन स्वाभाविक रूप से घर जाने के बाद वे फिर से सांसारिक कार्यों में पड़ जाते हैं। भीमवरम से घर जाने के बाद शुरू के एक सप्ताह तक सब कुछ अच्छा ही रहता है। वह दृढ़ता कुछ समय तक बनी रहती है, लेकिन जैसे-जैसे एक-एक सप्ताह बीतता जाता है, वह पकड़ धीरे-धीरे कम होती जाती है। आख़िरकार फिर से अपनी सामान्य स्थिति में आ जाते हैं।

इसलिए जब फिर से अपनी सामान्य स्थिति में आने लगें, उस समय यदि भीमवरम आएँ, तो वे फिर से पूरी तरह चार्ज हो जाते हैं। फिर वे पूरी तरह चार्ज होकर सामान्य रूप से जारी रखते हैं। इस प्रकार जब तीसरे महीने भी आ जाते हैं, तब फिर उन्हें देखने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। बहुत अच्छे साधक बन जाते हैं।

यदि घंटों-घंटों तक ध्यान करना है, तो आपको लगातार कुछ महीनों तक भीमवरम निश्चित रूप से आना ही होगा। भीमवरम में जितना प्रशिक्षण दिया जाता है, उतना प्रशिक्षण हमारे समाज में कहीं और नहीं है।

इसलिए इतने घंटों तक अपने घर को छोड़कर, एक अलग वातावरण में, इतने सारे ज्ञानी लोगों के बीच में बैठकर सामूहिक ध्यान करने पर, इसके साथ-साथ भीमवरम का ध्यान मंदिर में पिछले 24 वर्षों से वहाँ सभी लोग लगातार ध्यान करने की वजह से वहाँ अत्यंत शक्तिशाली वाइब्रेशन्स (स्पंदन) होते हैं।

वहाँ इतने शक्तिशाली वाइब्रेशन्स (स्पंदन) होने कि वजह से ऐसा बैठें तो नए लोग भी अपनी आँखें नहीं खोलते। जब तक ओके नहीं कहा जाता, तब तक उसी तरह बैठे रहते हैं। ऐसे अवसर का प्रत्येक

व्यक्ति को अवश्य उपयोग करना चाहिए। आपको अपने मन को शुद्ध करके सात्त्विक गुण में आते हुए जीवन को लाभ के मार्ग पर चलाना चाहिए।

यदि सात्त्विक गुण में रहें, तो जीवित रहते हुए भी लाभ ही है, मृत्यु के बाद भी लाभ ही है। इस बात को प्रत्येक व्यक्ति को समझना चाहिए। लेकिन ऐसा नहीं कि वो आएँगी, ये आएँगी, अनुभव आएँगे, वे दिखाई देंगे, ये दिखाई देंगे, ऐसा कहते हैं। लेकिन उनसे कोई फायदा नहीं है।

आख़िर कौन आए तो क्या उपयोग है ? यदि आप यहाँ गलतियाँ करते रहते है, तो जो काम नहीं करने चाहिए वे करते हैं तो, पाप करते हैं तो, तुम अवसर मिलने पर सेवा नहीं करते हैं, जो कुछ आपके पास है उसका भी सदुपयोग नहीं कर पाते, तो क्या दिखाई दे तो तुम्हें क्या उपयोग है ?

वे सब बिल्कुल भी आवश्यकता नहीं है। यदि आप लगातार छह महीने तक भीमवरम आएँ, तो निश्चित रूप से मास्टर बन जाएँगे। निश्चित रूप से सभी को ध्यान सिखा सकेंगे, ज्ञान का भी उपदेश दे सकेंगे। आप भी बहुत अच्छी तरह बोल सकेंगे। और इस प्रकार बताने से उसका फल भी आप प्राप्त कर सकते हैं।

यदि आप तीन महीने तक भीमवरम आएँ, तो सात्त्विक गुण में आ सकने वाली साधना आप घर पर बैठकर भी बहुत आसानी से कर सकेंगे।

यदि आप अच्छी तरह ध्यान करेंगे, तो स्वतः ही सात्त्विक गुण में आ जाएँगे। यह बात स्वयं भगवद्गीता में भी कही गई है। अब इससे

बढ़कर और क्या चाहिए ? यह सब तो वेदों से निकला हुआ सार ही है, न ? भगवद्गीता तो वेदों का ज्ञान ही है, है ना ? इसका तो कोई मुकाबला ही नहीं है, है ना ? जब स्वयं श्रीकृष्ण ने यह कहा है, तो फिर इसका मुकाबला ही क्या हो सकता है ? इसलिए हमें भगवान श्रीकृष्ण के बताए हुए सत्य वचनों को समझकर उनका पालन करना चाहिए।

इसलिए आपको मृत्यु से पहले सात्त्विक गुण में आ जाना चाहिए। यह हर व्यक्ति को करना चाहिए। अब इससे अधिक कहने के लिए कुछ भी नहीं है। इतना समझ लें, वही पर्याप्त है।

उन्होंने कहा है कि सात्त्विक गुण से युक्त लोग मृत्यु के बाद ऊर्ध्व लोकों में जाते हैं। इसी प्रकार रजोगुण से युक्त लोग मध्य लोकों में जाते हैं। वे ऊर्ध्व लोकों के स्तर के नहीं होते, लेकिन मध्य लोकों में जाते हैं। तमोगुण वाले लोग अधोलोकों में जाते हैं।

वे जिस लोक में जाते हैं, उसी के अनुसार उन्हें फल प्राप्त होते हैं। वहाँ सभी लोग उसी प्रकार के होते हैं। उन्नत लोकों अर्थात ऊर्ध्व लोकों में महान आत्माओं से परिचय होता है। वे उनके ज्ञान को प्राप्त कर सकते हैं। फिर भविष्य के जन्मों के बारे में वहाँ उन सभी के साथ चर्चा करके, उसके अनुसार जन्म चुनते हैं।

इस प्रकार पृथ्वी पर आने के बाद, कितना भी भूल जाएँ, कुछ कार्य कर सकते हैं। वहाँ जो सोचा था, वह उन्हें अंतर से पता चलता रहता है। वहाँ आत्मा ही गई थी, इसलिए वहाँ आत्मा ने जो निर्णय लिए थे, यहाँ पृथ्वी पर आकर शरीर लेने के बाद, भीतर से महसूस होते रहते हैं।

जब भी महसूस होता है, उस तत्त्वगुण में रहने वालों को पता चलता रहता है। यदि वे रजोगुण या तमोगुण में हों, तो भीतर से पता चलने

पर भी उन्हें समझ में नहीं आता।

इन तीनों प्रकार के गुणों में होते हैं तो उनका व्यवहार कैसा होता है ? उनका परिणाम कैसा होता है ? उनकी मृत्यु के बाद वे कौन-सी स्थिति प्राप्त करते हैं ? यह सब पता चलाता है।

इसी प्रकार इन तीनों गुणों के बारे में भी चर्चा की। कुल मिलाकर मनुष्य में चार प्रकार के गुण होते हैं। तमोगुण, रजोगुण, सत्त्वगुण, निर्गुण। भगवद्गीता में बताया गया है कि मनुष्य इन चार प्रकार के गुणों में रहता है। हमने तीन गुणों के बारे में चर्चा की।

जो निर्गुण अवस्था तक पहुँचना चाहते हैं, अत्यंत गहन साधना करनी चाहिए। यदि कोई व्यक्ति वर्षों तक सांसारिक विषयों में अपनी आसक्ति कम करके अपना पूरा जीवन उसी के लिए समर्पित कर सके, तो वह निर्गुण अवस्था को भी पहुँच सकते हैं। ''असंभव'' कुछ भी नहीं है, लेकिन उसके अनुसार प्रयास करना चाहिए।

निर्गुण अवस्था में मनुष्य ''ईश्वर की तरह'', यानी भगवान का व्यवहार जैसा होता है, वैसे ही व्यवहार करता है। जिन्हें हम देवता कहते हैं, वैसे ही व्यवहार करता रहता है। सभी महान कार्य ही करता है, लोककल्याणकारी कार्य ही करता है, उन कार्यों पर सभी आश्चर्य करते रहते हैं।

इनके द्वारा किए जाने वाले सभी कार्य केवल लोककल्याण के ही होते हैं, सभी के लिए लाभकारी होते हैं, सभी को आनंद देने वाले होते हैं। अर्थात समस्त जीव-जंतुओं, पशु-पक्षियों के लिए लाभकारी कार्य ही करते रहते हैं। फिर सभी मनुष्यों की भलाई के लिए भी प्रयास करते हैं। सभी को एक समान देखते हैं।

वह अलग, यह अलग नहीं। उस अवस्था में सभी मनुष्य ही रहते हैं। सब अलग-अलग हैं, ऐसी अवस्था तमोगुण, रजोगुण की है। सब एक ही हैं ऐसी अवस्था निर्गुण की है। इसलिए वे सभी को एक ही रूप में देखते हैं, सभीसे प्रेम करते हैं। और ऐसे होते हैं तो उन्हें देवता ही कहते हैं।

मुख्य बात यह है कि जब उनका मन निर्गुण अवस्था तक पहुँच गया है। अर्थात शून्य हो गया है। मन इस प्रकार व्यवहार करने का कारण उसका गुण ही है। आख़िर मन में इतने प्रकार के गुण क्यों हैं ? अर्थात इसका कारण यह है कि भगवान श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता के माध्यम से इसका बोध कराया है।

श्लो।। प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताऽहमिति मन्यते।। (भ.गी.3-27)

ता। प्रकृति में होने वाले सत्त्व, रज, तमो गुणों के परिवर्तनों के कारण ही समस्त कार्य होते रहते हैं, फिर अहंकार से मूढ़ लोग इन सभी कार्यों का कर्ता मैं ही हूँ, ऐसा मानते हैं।

उपरोक्त श्लोक के अनुसार भगवान श्रीकृष्ण ने बताया है कि मनुष्य के गुण प्रकृति के अनुसार ही होते हैं। अतः इसका अर्थ यह है कि इस संसार में मनुष्य तमोगुण, रजोगुण, सत्त्वगुण तथा निर्गुण इन चार प्रकार के गुणों से युक्त होते हैं। ऐसा भगवान श्रीकृष्ण ने बताया है। यह प्रकृति का स्वभाव है। जिसमें जैसा गुण होता है, उसका व्यवहार भी उसी के अनुसार होता है। अर्थात वे जो कार्य करते हैं, वे सभी उसी गुण के अनुसार होते हैं।

इसलिए तमोगुण में होने वाले लोगों का व्यवहार एक तरह का

होता है। इसी प्रकार रजोगुण में होने वाले लोगों का व्यवहार दूसरे प्रकार का होता है। सत्त्वगुण में होने वाले लोगों का व्यवहार एक और प्रकार का होता है। इसी प्रकार, निर्गुण अवस्था में होने वाले लोगों का व्यवहार इन तीनों से बिल्कुल भिन्न होता है। यह बात हमें जान लेनी चाहिए।

पत्री जी कहते हैं कि चाहे वे ''कितने भी महान हों, कांतदास ही हैं।'' स्वाभाविक रूप से यह बात सुनते ही हर व्यक्ति यही समझता है कि चाहे कोई कितना भी बड़ा व्यक्ति हो, कितना भी बड़ा अधिकारी हो या कोई और भी हो, कोई भी हो, ''कान्त'' का अर्थ स्त्री का दास समझते हैं। लेकिन पत्री जी ने बताया कि कान्त का अर्थ प्रकृति है। अर्थात कोई भी किसी भी प्रकार का क्यों न हो, सभी प्रकृति के दास हैं। यानी हर मनुष्य प्रकृति के गुणों का दास है।

पत्री जी ने आगे समझाया कि उस प्रकृति के गुणों के अनुसार ही उनका व्यवहार होता है। सचमुच, पत्री जी एक-एक बात की कितनी गहराई से विवरण देते हैं, कितनी समझ में आने वाला विवरण देते हैं, सचमुच आश्चर्य होता है। इतने ''महान ज्ञानी'' होने के कारण ही वे इन सब बातों की इस प्रकार समझाते रहते हैं।

इसलिए जो भी लोग पत्री जी का अनुसरण करते हैं, उनके संदेश सुनते रहते हैं, उनकी पुस्तकें पढ़ते रहते हैं, वे असीम ज्ञान को प्राप्त कर सकते हैं, महान रूप से आगे बढ़ते हैं, जीवन में लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

जो भी लोग श्रीकृष्ण जी द्वारा कही गई इस बात को समझते हैं, उन्हें यह पता चल जाता है। उसके गुणों के अनुसार ही वह वैसा व्यवहार कर रहा है, वह गलतियाँ कर रहा है। इसलिए आत्मज्ञानी ऐसे व्यवहार करने वालों की न तो आलोचना करते हैं, न ही निंदा करते हैं।

क्योंकि उन्हें यह भी पता है कि वे नहीं बदलेंगे। अगर उन्हें बदलना चाहते हैं, तो उनके गुण बदलना चाहिए। इसीलिए ज्ञानी उन्हें ऐसे ही छोड़ देते हैं, उनकी परवाह नहीं करते। स्वाभाविक रूप से ज्ञानी उनके मन को बदलने का प्रयास करते हैं।

बाबू, ध्यान करो! तुम्हें यह लाभ मिलेगा, वह लाभ मिलेगा, ऐसा कहने पर उस लाभ, इस लाभ के लिए ही सही, ध्यान में बैठते हैं। धीरे-धीरे ध्यान में बैठकर करते-करते, उसे बिना पता चले ही उसमें बदलाव आता है। क्योंकि ? गुण बदल गया, इसलिए व्यवहार बदल जाता है। तब वह अपने आप ही ठीक हो जाएगा।

इसलिए आत्मज्ञानियों को पता है कि गुण बदले बिना व्यवहार नहीं बदलता। इसीलिए पत्री जी हमें दो बातें बताते हैं। स्त्रस्त्रनो कमेंट, नो जजमेंटस्त्रस्त्र का मतलब है, किसी की आलोचना मत करो, किसी के बारे में निर्णय मत करो, ऐसा कहते हैं। वह अधिक है, यह कम है, इस तरह के कोई भी निर्णय मत करो, ऐसा कहते हैं।

क्योंकि वे उसके गुणों के अनुसार ही व्यवहार करते हैं। आप क्या सोचते हैं ? अगर ऐसा न कहेंगे, तो उसकी गलती कैसे पता चलेगी ? ऐसा आप सोचते हैं। लेकिन पत्री जी कहते हैं, हमें यह सब नहीं चाहिए, किसी की आलोचना मत करो, किसी के बारे में कोई निर्णय मत करो।

सिर्फ पत्री जी ही नहीं, अब मैं ही ऐसा नहीं कह रहा हूँ। आखिरकार, श्रीमद्भगवद्गीता में भी भगवान श्रीकृष्ण ने स्पष्ट रूप से कहा है कि निर्गुण अवस्था तक पहुँचना चाहिए।

श्लो।। त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।

निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्।।(भ.गी.2-45)

ता :- हे अर्जुना! वेद त्रिगुणात्मक संसार के विषयों को बताते हैं। तुम इन त्रिगुणों को छोड़ने वाले हो, द्वंद्वों से रहित हो, निरंतर शुद्ध सत्त्व का आश्रय लेने वाले हो, योगक्षेम की चिंता से रहित हो, आत्मज्ञानी बनो।

ये त्रिगुण अर्थात सत्त्व, रज, तमगुण संसार से संबंधित विषयों के बारे में ही बताते रहते हैं। इन तीनों गुणों में होने वाले लोग संसार के विषयों में ही होते हैं। इसी तरह, तमोगुण, रजोगुण में होते हैं, तो ये इच्छाएँ आदि होती हैं। सात्त्विक गुण में होते हैं, तो उसमें भी सांसारिक लाभ प्राप्त करने के लिए दान, सेवाएँ करते हैं। कुल मिलाकर, चाहे कुछ भी हो, सब संसार से संबंधित ही है।

इसलिए वे इन्हें भी छोड़ने के लिए कहते हैं। इन तीनों गुणों को पार करने के लिए कहते हैं। जब तुम इनसे पार करोगे, तब तुम्हारे लिए द्वंद्व नहीं रहेंगे। द्वंद्व क्या हैं ? अहंकार-ममता, जीत-हार, निंदा-स्तुति, लाभ-हानि।

उन्होंने कहा कि ऐसे द्वंद्वों से रहित बनो। निरंतर शुद्ध सत्त्व का अर्थ सात्त्विक भी नहीं है, और उसमें शुद्ध अवस्था है। उस स्थिति को आचरण करने के लिए कहा। अर्थात, श्रीकृष्ण ने भी सात्त्विक स्थिति में आने के लिए, सात्त्विक गुण में आने के लिए, शुद्ध सात्त्विक बदलने के लिए बहुत स्पष्ट रूप से कहा है।

इसी तरह, योगक्षेमों पर ध्यान न देने वाले बनो, आत्मज्ञानी बनो, ऐसा कहा। जो आत्मज्ञानी बनता है, उसे फिर इन योग-क्षेमों की कोई आवश्यकता नहीं होती। क्यों लाभ-हानियाँ ? अगर ये हों तो फिर धरती पर आना पड़ेगा, फिर जन्म लेने पड़ेंगे। इन दोनों से परे चले जाएँ तो वह

मोक्ष प्राप्त करता है।

यदि हमें ऐसी अवस्था प्राप्त करनी है, तो हमें प्रतिदिन प्रयास करना चाहिए, साधना करनी चाहिए। जो लोग इस प्रकार का प्रयास करते हैं, निश्चित रूप से जीवन में बहुत लाभ प्राप्त करते हैं। यह बात हमें अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए। मन के इन गुणों के आधार पर इस प्रकार कहा जा सकता है।

आप देखिए दीप पर घड़ा उलट देने को तमोगुण कहते हैं। अर्थात मन मलिन है। देखिए, अंदर स्थित आत्मा में ''करोड़ों सूर्यों का तेज'' होता है। लेकिन उस मन के गुण के अनुसार, मलिनता के अनुसार प्रकाशित होती है। यदि मन मलिन होता है, तो वह राक्षस की तरह व्यवहार करता रहता है। उसमें वे दैवी गुण नहीं होते। उसे तमोगुण कहते हैं।

दीपक पर टोकरी उलटने को रजोगुण कहते हैं। उस घड़े को निकालकर उसके ऊपर एक टोकरी उलट दें। टोकरी में छेद, खाली जगहें होती हैं। थोड़ी-सी उस दीपक की रोशनी बाहर फैलती रहती है। इसी प्रकार, रजोगुण में रहने वाले लोगों का मन उस प्रकार बदलने के कारण, उन लक्षणों के साथ रहते हैं।

इसी प्रकार, दीपक पर काँच की चिमनी उलटने को सत्त्वगुण कहते हैं। यदि आप दीपक पर काँच की चिमनी रख दें, तो भीतर का प्रकाश प्रकाशमान ही रहता है। ऐसे लोग अधिक सेवाएँ, अच्छे कार्य, लोककल्याणकारी कार्यों में रुचि दिखाते रहते हैं।

उसी तरह दीप पर कुछ भी न उलटने को निर्गुण कहते हैं। और वे भगवान के समान होते हैं। पूरी तरह यह शरीर आत्मस्थिति में होता है, दैवी स्थिति में होता है। भगवान जो कार्य करते हैं, वही कार्य करती रहती

है।

अर्थात, इस भीतर स्थित आत्मशक्ति, आत्मतेज, आत्मप्रकाश - ये सभी आत्मा से संबंधित ज्ञान बाहर प्रकट होना है तो मन को शुद्ध करना चाहिए। जितना शुद्ध करेगा, वह उतना ही आगे बढ़ेगा, उतने ही अच्छे कार्य करेगा, बड़े-बड़े कार्य करेगा, उसकी उतनी ही सभी प्रशंसा करेंगे, महान व्यक्ति के रूप में उसकी कीर्ति करेंगे, अच्छे व्यक्ति के रूप में कहेंगे।

इसे अच्छी तरह याद रखिए। मनुष्य इतने प्रकार से व्यवहार करता है, तो उसका कारण मन ही है। मन का अर्थ मन का गुण है, यह जानना चाहिए। यदि व्यवहार भी बदलना है, तो मन को बदलने का प्रयास करना चाहिए।

आप भी सही! सोच लीजिए। वह अच्छे काम कर रहा है, उसे लाभ मिल रहा है, वह महान बनकर आगे बढ़ा है, मैं भी आगे बढ़ूँ, ऐसा हर किसी को लगता है। अगर आप आगे बढ़ना चाहते हैं, तो पहले अपने मन को बदलने का प्रयास करें।

आपका मन बदल जाए तो आप अपने आप आगे बढ़ेंगे, किसी के कहने की आवश्यकता नहीं है। आपका मन जितना शुद्ध होगा, आप उतनी ही महान अवस्था तक पहुँचेंगे, किसी से पूछने की भी आवश्यकता नहीं है। सब कुछ आपके भीतर ही है, अपने भीतर स्वयं को सुधार कर लें। इसीलिए पत्री जी कहते हैं, ''बाह्य नहीं - अपने अंतर को देखो।''

अंतर में क्या है ? आत्मा है। ऊपर मन है। उस मन को शुद्ध करने का प्रयास ही करना चाहिए। वही मार्ग पत्री जी ने हमें दिया है, '' श्वास पर ध्यान।'' इसीलिए मैं कहता हूँ कि सही ध्यान कीजिए। सही ध्यान अर्थात '' श्वास पर ध्यान ही है।''

‘‘मन अच्छी तरह बदलना हो तो’’

सभी में मन है। शरीर ही नहीं, बल्कि शरीर के साथ मन, आत्मा हैं, लेकिन मन ही प्रमुख भूमिका निभाता है। क्योंकि मन के अनुसार ही देह, इन्द्रियाँ सभी कार्य करती हैं।

ऐसे मन के बारे में जानना बहुत ही आवश्यक है। यह मन बुरा हो तो बुरे काम करते हैं, बुरे परिणाम मिलते हैं। यदि वही मन अच्छा हो तो अच्छे काम करते हैं, अच्छे परिणाम मिलते हैं।

ऐसे मन को अच्छी तरह बदलना हो तो, इसके बारे में अब जान लेते हैं। मुख्य रूप से, यदि हम यहाँ ध्यान दें, तो बड़ों ने मन के दो प्रकार बताए हैं। वे क्या हैं ? 1. ‘‘काम-संकल्प सहित।’’, 2.‘‘काम-संकल्प रहित।’’

1. काम-संकल्प सहित :-

काम अर्थात इच्छाओं, संकल्पों से युक्त मन। उसी को काम-संकल्प सहित कहते हैं। उसी को अशुद्ध मन भी कहते हैं।

इसी तरह काम-संकल्प रहित अर्थात इच्छाओं, संकल्पों से रहित मन। उसी को शुद्ध मन कहते हैं।

यदि यहाँ गौर से देखें, तो स्वाभाविक रूप से ध्यान न करने वालों का मन अशुद्ध ही रहता है। ऐसे लोगों की अनेक इच्छाएँ होती हैं, अनेक संकल्प करते रहते हैं। ऐसी होने पर स्वाभाविक रूप से उन्हें पूरा करने के लिए तरह-तरह के प्रयास करते हैं। उन इच्छाओं को पूरा करने के लिए धन कमाना महत्त्वपूर्ण है, इसलिए धन कमाने को अधिक महत्त्व देते हैं।

इसी प्रकार बहुत से लोग उस धन कमाने के लिए तरह-तरह की

गलतियाँ, पाप करते रहते हैं, तो कष्ट, समस्याएँ, रोग आदि आते हैं। जब वे सब आते हैं, तब फिर उनसे बाहर निकलने की इच्छा होती है। इससे बाहर निकलना है, इस समस्या को दूर करना है, शांति से रहना है, ऐसा बहुत कुछ! फिर किसी गुरु को या बड़ों में से किसी एक को आश्रय लेकर, वे जैसा कहते हैं वैसा करते हैं।

यदि हिन्दू हैं, तो मंदिर जाते हैं, उस भगवान का आश्रय लेते हैं। यदि ईसाई हैं, तो चर्च जाते हैं, उस परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं। यदि मुसलमान हैं, तो मस्जिद जाते हैं, वहाँ अल्लाह की नमाज़ अर्थात प्रार्थना करते रहते हैं। ऐसा स्वाभाविक रूप से देख रहे हैं। जब काम-संकल्प सहित मन होता है, तब यही होता है।

लेकिन कुछ लोग ध्यानमार्ग में आते हैं। इस तरह आकर भी ध्यान करते हुए भी कुछ लोगों का मन मलिन ही रहता है, अर्थात अशुद्ध ही रहता है। उन्हें भी अनेक प्रकार की इच्छाएँ होती हैं। ध्यानमार्ग में आने पर भी तरह-तरह के संकल्प करते रहते हैं।

वास्तव में वे ध्यान भी संकल्प रखकर ही करते रहते हैं। ऐसा अपनी इच्छाएँ पूरी करने के लिए ही करते रहते हैं। यह सब भी हम देख रहे हैं, लेकिन स्वाभाविक रूप से जो लोग विशेष रूप से ध्यान करते हुए, आहार के नियमों का पालन करते रहते हैं, कुछ समय बाद उनका मन शुद्ध हो जाता है।

जब उनका मन शुद्ध हो जाता है, तब वे इच्छाओं, संकल्पों को पार कर लेते हैं, अर्थात उन्हें नियंत्रण में कर लेते हैं। यानी वे आवश्यकताओं तक ही सीमित हो जाते हैं। अर्थात उनकी सांसारिक इच्छाएँ, संकल्प नियंत्रण में रहते हैं, यानी उन्हें बहुत कम महत्व देते रहते हैं।

इसके साथ, उस स्तर पर पहुँचे हुए लोगों में आध्यात्मिक, ज्ञान से संबंधित इच्छाएँ, संकल्प होते हैं। आध्यात्मिक का अर्थ आत्मा से संबंधित होता है। मुझे ज्ञान प्राप्त करना है, ज्ञान बढ़ाना है, ऐसी बातें होती हैं। अत: वे क्या करते हैं ? विशेष रूप से ध्यान करते रहते हैं। आध्यात्मिक विकास के लिए तथा आत्मोन्नति के लिए प्रयास करते हैं।

यह बात समझ में आती है कि मैं शरीर नहीं, आत्मा हूँ। इस आत्मा की उन्नति के लिए, आध्यात्मिक विकास के लिए आवश्यक आत्मज्ञान प्राप्त करना है, यह समझते हैं। उसे प्राप्त करने के लिए प्रयास करते रहते हैं। इतना ही नहीं, वे आध्यात्मिक तथा आत्मिक इच्छाओं को अधिक महत्व देते हैं।

स्वाभाविक रूप से अशुद्ध मन वाले लोग प्रापंचिक इच्छाओं को अधिक महत्व देते हैं। लेकिन जब इस ध्यान मार्ग में आते हैं, तब वे आध्यात्मिक तथा आत्मा से संबंधित इच्छाओं को अधिक महत्व देने लगते हैं।

इसलिए वे विशेष रूप से ध्यान करते हुए, ज्ञानवर्धक पुस्तकें पढ़ते रहते हैं। इसी प्रकार आत्मज्ञानियों के साथ सत्संग करते रहते हैं। इतना ही नहीं आध्यात्मिक मार्ग में सेवाएँ भी करते रहते हैं। इस प्रकार ऐसा करते हुए मन को और अधिक शुद्ध करते हैं।

इस प्रकार मन को शुद्ध करके धीरे-धीरे ज्ञान को हासिल करते हैं। उस ज्ञान को बढ़ाने का प्रयास करते हैं, धीरे-धीरे ज्ञान को बढ़ाते हैं। इस प्रकार जैसे-जैसे उनका ज्ञान बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे जीवन में संतुष्ट, प्रसन्न होकर जी पाते हैं। क्योंकि जो लोग ''शब्द, स्पर्श आदि विषयों में लीन रहते हैं, इंद्रिय सुखों के दास बने रहते हैं,'' उन्हें स्वाभाविक

रूप से सुख अल्प होता है, दुःख अधिक होता है।

प्रापंचिक, काम-संकल्प सहित मन अर्थात अशुद्ध मन। उस अशुद्ध मन में प्रापंचिक इच्छाएँ ही होती हैं, उसी प्रकार के संकल्प ही होते हैं। वे सुख-भोगों की ओर आकर्षित हो जाते हैं।

फिर इन इन्द्रियों के द्वारा से उन सुखों की इच्छा करते हैं। मनुष्य की पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ होती हैं। उन पाँच ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा सुखों का अनुभव करना चाहते हैं। इसीलिए जो लोग शब्द, स्पर्श आदि इन्द्रिय-विषयों की ओर आकर्षित होते हैं। यहाँ ''शब्द'' का अर्थ ध्वनि है। अच्छा संगीत सुनना चाहते हैं, अच्छे दृश्य देखना चाहते हैं।

इसी प्रकार स्पर्श का अर्थ है काम-वासना की तृप्ति करना, या फिर अच्छे ए.सी. में रहना, आराम, सुख-सुविधा के साथ यात्रा करना। इस प्रकार की बातों में लीन रहते हैं। स्वाभाविक रूप से ऐसी बातों के अधीन रहने वालों को सुख स्वल्प ही होता है, जबकि दुःख अधिक होता है। इन सुखों को प्राप्त करने के लिए प्रयास करते हैं, लेकिन कितना भी प्रयास करें, उन्हें मिलने वाला सुख स्वल्प ही होता है।

जिसे भी देखो, वही दिखाई देता है। वे मेहनत करते हैं, कमाते रहते हैं। यदि बहुत से लोगों के जीवन को देखें, तो जिन लोगों के पास बहुत धन होता है, वे सुबह से रात तक कड़ी मेहनत करते रहते हैं।

आख़िर यह सारी मेहनत किसलिए? सुख पाने के लिए ही। इतना समय मेहनत करने के बाद, रात को थोड़ी देर के लिए मिलने वाले सुख के लिए ही।देखें तो, कितनी मेहनत कर रहे हैं! लेकिन मिलने वाला सुख स्वल्प है।

इसी प्रकार धन कमाने के लिए किए जाने वाले उनके प्रयासों में वे बहुत तनाव, कई तरह के झगड़े, समस्याएँ, परेशानियाँ आदि का सामना करते रहते हैं। और उन्हीं के कारण दुःख भी भोगते रहते हैं।

बड़ों ने क्या कहा है ? जो लोग इन शब्द, स्पर्श, दृश्य, रस आदि विषय-सुखों के वश में हो जाते हैं, उन्हें सुख स्वल्प, दुःख अधिक होता है। इसीलिए महर्षि वशिष्ठ ने योग वशिष्ठ में कहा है कि इस संसार में दुःख अनंत हैं, सुख घास के तिनके के समान है।

इसलिए दुःख से युक्त इन सांसारिक सुखों में दृष्टि नहीं होनी चाहिए, ऐसा महर्षि वशिष्ठ ने कहा। स्वल्प सुखों के लिए अनंत दुःख का अनुभव करना नहीं है। दुःख से बाहर निकलने का प्रयास करना चाहिए, ऐसा महर्षि वशिष्ठ ने कहा। कितना अद्भुत संदेश है, एक बार सोचिए।

यदि स्वयं श्रीराम जैसे महान पुरुष को भी उन्होंने उपदेश दिया, तो सोचिए, वे कितने महान रहे होंगे। अपने ज्ञानोपदेश से श्रीराम के दुःख को दूर कर दिया। इससे हम समझ सकते हैं कि वशिष्ठ जी कितने महान थे। और उन्होंने अपने द्वारा प्राप्त ज्ञान के सार को श्रीराम के माध्यम से संसार को स्पष्ट रूप से उपदेश दिया। "बेटा! इस संसार में सुख घास के तिनके के समान हैं, दुःख अनंत है," ऐसा कहा।

स्वल्प सुखों के लिए अनंत दुःख का अनुभव नहीं करना है। लोग दिन-रात मेहनत करते हुए थोड़े-से सुख के लिए जीवनभर कष्ट उठाते रहते हैं।अंत में जीवन समाप्त हो जाता है, लेकिन इतना कष्ट करने पर भी अपना समय, अपनी शक्ति, अपनी बुद्धि, सब कुछ उसी में ही लगाते रहते हैं।

धन कमाकर, अपनी संपत्ति बढ़ाकर, अधिक सुख-सुविधाएँ जुटाकर उनका आनंद लें, ऐसा सोचते ही रहते हैं, लेकिन उनका अनुभव करने से पहले ही इस संसार से चले जा रहे हैं।

बेचारे! इतनी मेहनत करने के बाद अंत में चले जाते हैं। ऐसा बहुत से लोगों के जीवन में देखते हैं। और बहुत कष्ट करके धन कमाकर घर बनाते हैं, लेकिन अंत में वे ही चले जा रहे हैं। इसलिए तुम दुःख से बाहर निकलने का प्रयास करो, ऐसा कहा। इसलिए कम-से-कम 25% समय इस दुःख से बाहर निकलने का प्रयास करना चाहिए।

क्योंकि चाहे कितना भी सब कुछ हो, यदि दुःख है तो उसका कोई उपयोग नहीं है। इसलिए ऐसी चीज़ों के लिए प्रयास करना नहीं है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को इसे समझना चाहिए।

पात्री जी जो कुछ भी बताते हैं, वह सब हमें दुःख से पूरी तरह बाहर निकलने के लिए ही है। असल में, हम तीन दिनों की कक्षाएँ लगाकर जो कुछ भी सिखाते हैं, वह सब यही है। पात्री जी जो कुछ भी सिखा रहे हैं, बड़े-बड़े महर्षि, महान लोग जो बातें सिखा रहे हैं, वही बातें सिखा रहे हैं।

किसी तरह अस्थायी रूप से एक-दो समस्याओं, कष्टों से बाहर निकलना नहीं है। या किसी के तरह अनुभव प्राप्त करना नहीं हैं। असल में, क्या करना चाहिए? क्या नहीं करना चाहिए? यह जानना चाहिए।

जीवन में कौन-सी बातें हमें नुकसान पहुँचाती हैं? कौन-सी हमें लाभ पहुँचाती हैं? हमें क्या नहीं करना चाहिए? क्या करना चाहिए? इन सब बातों को जानकर, उनके अनुसार जीवन जिएँ, तो जीवन अद्भुत

होगा। उन सबको छोड़कर कुछ भी करते रहें, तो क्या फायदा है ? इसलिए हर किसी को यह जानना चाहिए। नहीं तो कोई लाभ नहीं है। वशिष्ठ जैसे महान ऋषि बता रहे हैं, तो यह कोई साधारण बात नहीं है।

ये सुख-दुःख सब मन की स्थिति पर निर्भर हैं। यह बात हर किसी को समझनी चाहिए, यह बहुत महत्वपूर्ण बात है। मनुष्य को सुख-दुःख वस्तुओं से नहीं आते हैं। वे मन की स्थिति पर निर्भर हैं। इसीलिए बहुत से लोग वस्तुएँ खरीदकर जुटाने की कोशिश करते रहते हैं। वे सोचते हैं कि सब कुछ उन्हीं में है, लेकिन उनमें नहीं है।

ध्यान वस्तुओं पर नहीं, बल्कि मन पर देना चाहिए। यह मन की स्थिति पर निर्भर है। यह बात हर किसी को जाननी चाहिए। सचमुच, अगर यह बात समझ में आ जाए, तो हर किसी का जीवन बहुत बदल जाएगा।

बहुत से लोगों को शराब पीने, जुआ खेलने, व्यभिचार करने, ताश खेलने और इस तरह की आदतें होती हैं। वे सोचते हैं कि ये सब करने से उन्हें सुख ही मिलता है। यानी शराब पीने से उसे सुख ही है, ताश खेलने से उसे सुख ही है, व्यभिचार करने से उसे सुख ही है, जुआ खेलने से उसे सुख ही है। ऐसा करने वाले बहुत से लोग हैं।

वे वही पसंद करते हैं। वही काम करते रहते हैं, लेकिन उनकी वजह से परिवार के लोगों को दुःख पहुँचाता है। क्योंकि, आप देखिए शराब पीकर आता है। उसे तो सुख ही लगता है, उसके लिए तो सब ठीक है। लेकिन घर आकर उस नशे में ऐसी बातें बोलता है, जो नहीं बोलनी चाहिए, गालियाँ देता है, मारता है, वहाँ नर्क बना देता है। तब तक जो घर खुशहाल था, उसके अंदर आते ही वह घर पूरी तरह भयावह हो जाता है। वहाँ का पूरा माहौल ही बदल जाता है।

क्यों बदल गया? तब तक तो सब ठीक था। वह आया, लेकिन कैसे आया? सामान्य रूप से आता तो अच्छा रहता, शराब पीकर आया। शराब क्यों पी? उसे लगता है कि शराब पीने में सुख है। वह सोचता है कि अगर वह शराब नहीं पिएगा, तो वह रह नहीं सकता। इसलिए शराब पीकर आया। शराब पीकर आने से उसे तो सुख मिला, लेकिन घर में रहने वाले लोगों को उससे बहुत दुःख हुआ।

झगड़ा करके, मारपीट करके कितने दिनों तक दुःखी रहते हैं, ज़रा देखिए। वास्तव में, जो पति-पत्नी आपस में प्रेम और सौहार्द से रहना चाहिए, उस नशे में उसे न तो पता रहता है कि वह क्या बोल रहा है, न ही यह पता रहता है कि वह क्या कर रहा है। बात-बात पर झगड़कर, मारपीट करके, आखिर में कई दिनों तक एक-दूसरे से दूर रहना कितना दुःख देता है।

इसी तरह अगर देखें तो ताश खेलकर कुछ लोग कितना पैसा गंवा देते हैं। घर में सबके लिए खर्च करने वाला पैसा वे उस ताश के खेल में हार जाते हैं कर्ज़ भी कर लेते हैं, या फिर अपनी कुछ संपत्ति तक बेचकर नुकसान उठा लेते हैं।

इसी तरह, जुआ, क्रिकेट की बेटिंग, चुनाव की बेटिंग ऐसी बहुत-सी चीज़ें हम देख रहे हैं। बहुत से लोग नुकसान उठा रहे हैं। जिन लोगों को लाभ हुआ है, वे हमें ज़्यादा दिखाई नहीं देते, लेकिन जिन लोगों को बहुत अधिक नुकसान हुआ है, वे ही हमें इनमें दिखाई देते रहते हैं।

इसी तरह व्यभिचार। एक पत्नी के होते हुए भी पत्नी से संतुष्ट न होकर किसी दूसरी स्त्री के मोह में पड़ जाता है, फिर पत्नी का ठीक से नहीं देखता, ठीक से पैसे नहीं देता, कमाई का पैसा उसी वेश्या पर खर्च

करता है। ऐसा करने से क्या होता है? संसार में वे सभी दु:खी होते हैं।

यहाँ एक बात है, जो एक को सुख देती है, वही दूसरे को दु:ख देती है। यहाँ अगर हम ध्यान रखें, तो सुख, दु:ख वस्तु में नहीं है। यह मन की स्थिति पर निर्भर करता है। अगर सुख वस्तु पर निर्भर होता, तो उस वस्तु के होने के कारण दोनों को सुख मिलना चाहिए था। लेकिन यहाँ सुख वस्तु पर निर्भर नहीं है। यह समझना चाहिए।

इसी तरह एक और उदाहरण देखते हैं। एक व्यक्ति ने दूसरे के घर में चोरी की। इसी तरह दूसरे ने पर्स चुराया। दूसरे ने एक महिला के गले से सोने की चेन चुरा ली।

यहाँ देखें तो वह काम, उस वस्तु को चुराने वाले को खुशी ही देता है, लेकिन जिसने वह वस्तु खोई है, वह वास्तव में बहुत दु:खी होता है। इसे ध्यान से देखें तो, वहाँ वस्तु के कारण नहीं, बल्कि यह मन की स्थिति पर निर्भर है।

वे स्वाभाविक रूप से, कहते हैं, मेरा तो नहीं गया क्या? उस वस्तु के जाने के कारण ही मुझे दु:ख हुआ, ऐसा कहते हैं। उसी वस्तु ने चोरी करने वाले को आनंद, खुशी दी, खोने वाले को दु:ख दिया।

देखिए, यहाँ जो वस्तु है, वह एक ही है। अगर उससे आनंद होता, तो दोनों को आनंद होना चाहिए, दु:ख होता, तो दोनों को दु:ख होना चाहिए। लेकिन एक को आनंद, दूसरे को दु:ख है, तो ये सुख-दु:ख वस्तु पर निर्भर नहीं हैं। मन की स्थिति पर निर्भर हैं। स्वाभाविक रूप से मन की स्थिति ऐसी होती है कि चोरी करने वाला हुआ ऐसी भावना से खुश रहता है। लेकिन बेचारा, ऐसा काम करने के कारण, उसके फलस्वरूप भविष्य

में जितना लिया है, उतना ही खो देगा।

जितना उसने चोरी की है, उससे कुछ अधिक ही भविष्य में किसी न किसी रूप में खो देगा। इस तरह खोकर, उससे भी अधिक दु:ख का अनुभव करेगा। इसी तरह वह धन चला जाए, वह वस्तु चली जाए,या वह सामान चला जाए, तो खोने वाले लोग वह चला गया, ऐसा मानकर दु:खी होते हैं। लेकिन यहाँ उन्हें यह बात पता नहीं होती कि उन्होंने पहले जो कर्म किया था, उसी कर्म के कारण उन्हें नुकसान हुआ है, ऐसा नहीं मानते।

इसलिए दु:खी होता रहता है। यदि यह सोच सके कि मैंने जो किया है, उसी का अनुभव कर रहा हूँ, तो दु:खी नहीं होगा। अच्छा! मेरा बकाया चुक गया, ऐसा सोचता है। ऐसा कैसे सोचूँगा जी, ऐसा कहता है। अब इस चोरी करने वाला इस जन्म में या अगले जन्म में, इसी प्रकार किसी और के द्वारा या किसी न किसी रूप में नुकसान उठाए, तो क्या होगा बताइए? बहुत दु:खी होगा।

वह यहाँ खुश हुआ, वहाँ दु:खी होगा। इसी तरह ये यहाँ दु:खी हो रहे हैं, लेकिन पहले इन्होंने किसी को दु:ख पहुँचाया होगा। वहाँ पहुँचाकर, यहाँ नुकसान उठा रहे हैं। इसलिए यहाँ मन के अनुसार, अगर वह वास्तव में यह समझ सके, उसे इतना-सा ज्ञान हो कि मैंने जो काम किया है, वह भविष्य में मुझे दु:ख देगा, तो वह यह नहीं करेगा।

यह बात पर खुश नहीं होगा कि वह काम मैंने किया है। इसी तरह ये भी दु:खी नहीं होते कि मैंने कभी जो किया था, उसी का अनुभव कर रहा हूँ। ठीक है! झंझट खत्म हो गई, ऐसा सोचते रहते हैं। लेकिन उस स्थिति में, उस भावना में ये रह नहीं पाने के कारण उस ''ज्ञान'' का न

होना ही। यह सब किस पर निर्भर है ? मन पर ही निर्भर है।

क्योंकि थोड़ा और जानने पर हमें समझ में आता है कि यह ज्ञान के आधार पर ही होता है। रमण महर्षि जी बहुत महान आत्मज्ञानी हैं, बहुत महान हैं। उनके जीवन में घटी हुई एक घटना को देखें तो पता चलता है। एक दिन कोई व्यक्ति रात के समय रमण महर्षि जी के आश्रम में चोरी करने के लिए प्रवेश कर गया था।

रमण महर्षि जी ने देखकर उस चोर से कहा, अरे बेटा! तुम बेकार में क्यों घबरा रहे हो ? मैं रहूँ तो तुम थोड़ा झिझकते हो, डरते हो। क्यों आई ? मैं बाहर चला जाता हूँ, तुम्हें जो चाहिए, वह ले लो और चले जाओ, ऐसा कहा था।

तब वह चोर शर्म से क्या करना है समझ में न आने पर, उनके पैरों पर गिर पड़ा। यहाँ अगर आप ध्यान दें तो रमण महर्षि जी की मानसिक स्थिति अलग थी। इसलिए उन्हें दुःख नहीं हुआ। वास्तव में, अगर कोई चोर घर में प्रवेश करे, तो लोग कितनी हड़बड़ी करते हैं, कितना डर जाते हैं। वह क्या-क्या लेकर चला जाएगा, क्या कर देगा, इस बात को लेकर कितनी चिंता करते हैं। लेकिन रमण महर्षि जी ने कहा, तुम्हें जो चाहिए, वह ले जाओ। तुम्हें जो सामान चाहिए, वह सामान ले जाओ। मैं बाहर चला जाता हूँ। रमण महर्षि जी की मानसिक स्थिति ही अलग थी। इसलिए, वे ज्ञानी थे, इसीलिए ऐसा व्यवहार किया। उन्हें पता था कि जो अपना नहीं है, वह कितना भी प्रयास करने पर हमारे पास नहीं रहेगा।

अगर कोई चीज़ अपनी नहीं है, तो वह कितना भी प्रयास करे, पूरे घर में ताले लगा दे, फिर भी किसी न किसी तरह वह चली जाएगी। उसी दिन ताले तोड़कर वह लेकर चला जाएगा। इसी तरह, जो चीज़

अपनी है, अगर वे गलती से रात में दरवाज़े पर ताला लगाना भूल भी जाएँ, तो कुछ नहीं होगा, वैसे ही रहेगी। यह बात ज्ञानियों को पता होती है।

रमण महर्षि जी को पता था कि जो उनका नहीं है, कितना भी प्रयास करने पर भी नहीं रहेगा, और जो उनका है, उसे कोई चुरा नहीं सकता, कोई ले नहीं सकता। इसलिए समझना चाहिए कि वे शांत थे।

सामान्य रूप से संसार में आज की स्थिति देखें तो बहुत से लोग दूसरों के दुःखी होने पर भी उनकी परवाह किए बिना केवल अपने सुख-संतोष को ही देखते हैं। हर समय अपने सुख, अपनी खुशी को ही देखते हैं।

अब आप किसी शराबी को देखिए। वह केवल अपना सुख देखता है, लेकिन अपनी पत्नी की स्थिति, बच्चों की स्थिति नहीं देखता। वह खुद कमाता है और पी लेता है। पत्नी की कमाई भी लेकर जाता रहता है। अगर वह पैसे नहीं देती, तो उन्हें मारता है। यानी वह अपना सुख देख रहा है, लेकिन उसकी पत्नी के सुख के बारे में नहीं सोचता, बल्कि उसे दुःख देता है।

आज हम राजनीति में भी यही देख रहे हैं। वे केवल अपनी झगड़ा ही देखते हैं, लेकिन यह नहीं सोचते कि सामने वाला दुःखी होगा। सामने वाला भी अपने जैसा ही है। हमें उसके साथ अन्याय नहीं करना चाहिए, गलत तरीके से उसकी चीजें नहीं छीनना चाहिए, ऐसी सोच उनमें नहीं होती। हर समय केवल अपनी झगड़ा ही देखते हैं।

कुछ लोग दूसरों को मारकर, हत्याएँ करके धन कमाते हैं। वे हर समय केवल अपना सुख ही देखते हैं। चाहे कुछ भी हो, ''किसी के दुःख से दूसरे का सुखी होना सृष्टि के विरुद्ध है।''

यह भगवान की सृष्टि के नियमों के विरुद्ध है। जो लोग इस तरह सुखी होना चाहते हैं, उन्हें फिर से अनंत दुःख का सामना करना पड़ेगा। उन्हें समय के लिए लाभ मिल जाता है, वे सोचते हैं कि सुखी हैं। लेकिन भविष्य में उन्हें निश्चित रूप से अनंत दुःख का सामना करना पड़ेगा।

इसलिए, कोई भी हो ''दूसरों को सुख देकर स्वयं सुखी होना चाहिए। ऐसा सुख ही भविष्य में दुःख नहीं देता।'' याद रखिए, सुख दूसरों को दुःख देकर प्राप्त करने वाला नहीं है। दूसरों को दुःख पहुँचाए बिना तुम सुखी रहो। इसमें तुम्हारा कोई नुकसान नहीं है। सामने वाले की परवाह किए बिना अगर तुम किसी तरह सुखी होना चाहते हो, तो नुकसान तुम्हारा ही होगा।

यह हम बहुत से परिवारों में देख रहे हैं। अहंकार में रहने वाले पुरुष, पति हर समय केवल अपनी ही बारे में सोचते रहते हैं। लेकिन यह बात नहीं सोचते कि पत्नी भी मेरी तरह ही एक इंसान है, उसकी भी ऐसी ही इच्छाएँ होती हैं। मुझे जिस तरह की इच्छाएँ होती हैं, उसी तरह की इच्छाएँ उसे भी होती हैं, यह विचार उनके नहीं आता। केवल अपनी ही बारे में सोचते रहते हैं। पत्नी का चाहे जो हो जाए, उसकी परवाह नहीं करते। लेकिन भविष्य में उन्हें इससे भी अधिक दुःख भोगना पड़ेगा, यह बात उन्हें समझ में नहीं आती।

इसलिए पत्री जी ने क्या कहा है ? दूसरों को अपमानित करके, दुःख पहुँचाकर मनोरंजन करना नहीं है। दूसरों को मनोरंजन करके, स्वयं भी मनोरंजन करना चाहिए। इसीलिए सभी को हँसाते हुए स्वयं भी हँसते रहते हैं, लेकिन किसी को भी दुःख नहीं पहुँचाते।

गौर से देखें तो दुनिया में बहुत से लोग बड़प्पन के लिए, जब दस लोग एक साथ मिलते हैं, स्वयं को ही बुद्धिमान समझने के लिए, जब दस लोग हों, उनमें जो कोई कम बुद्धि वाला हो, उसे देखकर, उसे संबोधित करके, उसका अपमान करते हुए, उसे नीचा दिखाते हुए, उस पर मज़ाक करते रहते हैं, तो सभी लोग हँसते हैं, मनोरंजन करते हैं।

लेकिन वह कमजोर होने के कारण, कम बुद्धि होने के कारण कुछ कह नहीं सकता। लेकिन जब सभी लोग इस तरह हँसते रहते हैं, उसका मज़ाक उड़ाते रहते हैं, तो वह मन ही मन दु:खी होता रहता है। एक बार कहकर चुप नहीं रहते, दिन भर उनका वही काम रहता है। वह क्या करेगा ? कुछ नहीं कर सकता।

वह सोचता है कि इस तरह अपमान करके सब लोग उसकी बुद्धिमानी की प्रशंसा कर रहे हैं। वह स्वयं को बहुत बड़ा समझकर फूल जाता है। लेकिन भविष्य में उसने जितना अपमान किया है, उतना ही अपमान सहना पड़ेगा, बल्कि उससे भी अधिक दु:ख मिलेगा। जो भी किया है, रिकॉर्ड होता है, यूँ ही नहीं जाता।

इसलिए जिस तरह भी आपके कारण दूसरों को दु:ख हुआ है, वह आपको अनुभव करना ही पड़ेगा। इसलिए बहुत सावधानी से रहना चाहिए। आपकी वजह से किसी को, किसी प्राणी को, किसी जीव को, किसी को भी हानि, कष्ट, नुकसान, पीड़ा नहीं होना चाहिए। इस तरह सावधानी बरतेंगे तो भविष्य में आपको किसी भी प्रकार का कष्ट, नुकसान, पीड़ा नहीं होगी। जीवन में सफल होना है तो आपको सुखी रहना होगा; आनंद से रहना है तो आपको यही करना चाहिए।

इसलिए पत्री जी कहते हैं कि मनोरंजन करके मनोरंजन करना

चाहिए। इसीलिए, आप देखिए, विवाहों में, समारोहों में, कोई पार्टी या फंक्शन करते हैं, छोटे-छोटे फंक्शन हों, कोई भी हों, स्वाभाविक रूप से छोटे-छोटे उपहार देते हैं। इस तरह देकर उन्हें खुश करके स्वयं खुश होते हैं।

आप एक बार देखिए, फंक्शन्स, शादियाँ होती रहती हैं। छोटी-छोटी चीज़ें, अपनी-अपनी हैसियत के अनुसार कोई रुमाल देते हैं, नहीं तो ब्लाउज़ का कपड़ा देते हैं, नहीं तो कोई बड़ा उपहार देते हैं। इस तरह आए हुए लोगों को अपनी-अपनी हैसियत के अनुसार देकर खुश करते हैं, फिर इस तरह उन्हें खुश करके स्वयं भी खुश होते हैं।

यह पहले से चली आ रही रीति है, बड़ों द्वारा बनाई गई रीति है। उन बड़ों ने इसे क्यों बनाया, यूँ ही नहीं बनाया। इस तरह सबको खुश करके अगर वह स्वयं वह समारोह करेगा, तो वह विवाह करेगा, तो वह समारोह सफल होता है, यानी वह विवाह भी बहुत सफल होता है, उनके जीवन में आपस में प्रेम और सामंजस्य से रहने का अवसर बनता है।

यह जाने बिना वर्तमान में बहुत से लोग ऐसे समारोहों में स्वयं मनोरंजन करने के लिए जानवरों, पक्षियों, जलचरों को अर्थात मछलियों को मारकर उनका मांस खाकर सुख पा रहे हैं, ऐसा मान रहे हैं।

वे दूसरे जीवों की हिंसा से मनोरंजन कर रहे हैं, लेकिन उन्हें मनोरंजन कराकर स्वयं मनोरंजन नहीं कर रहे हैं। लेकिन उनकी हिंसा के कारण भविष्य में इन्हें अनंत दुःख झेलना पड़ेगा। वह भविष्य में उनके जीवन को नरक बना देगा।

क्या मानते हैं ? यही कि अच्छी तरह तरह-तरह के व्यंजन बनाकर, अच्छा-सा समारोह करके हम मनोरंजन कर रहे हैं। लेकिन वहाँ उन

मुर्गियों, उन बकरियों, उन मछलियों को मारकर उन्हें बहुत प्रताड़ित कर रहे हैं। उस विवाह समारोह में देखें तो कितनी मुर्गियों को मारते हैं, कितनी बकरियों को काटते रहते हैं। वे कैसे तड़पती हैं, रोती हैं, विलाप करती हैं ? उनके विषाद में ये लोग मनोरंजन करते हैं। वे विषाद में रहते हैं और ये मनोरंजन करना चाहते हैं, तो वह कहाँ सफल होगा ?

निश्चित रूप से, इसके परिणामस्वरूप भविष्य में बहुत अधिक नरक भोगना पड़ेगा। इस बात पर कोई विचार नहीं कर रहा है। कितनी देर तक कोई कुछ भी हो, कोई भी जानवर हिंसा सहता रहे, वे इसकी परवाह नहीं करते। कब तक अपने मनोरंजन, अपने सुख को ही देख रहे हैं ? लेकिन भविष्य में उसके परिणाम को दुःख के रूप में भोगना ही नहीं, बल्कि बहुत नरक भोगना पड़ेगा, यह जान नहीं पा रहे हैं।

अर्थात शादी करने वाले लोग बार-बार झगड़ते हैं, अशांति का शिकार होते हैं, कभी-कभी तलाक लेना भी हो जाता है, जिससे दोनों का जीवन नरक जैसा हो जाता है।

यह सब क्यों होता है ? अर्थात, ''मन की स्थिति के अनुसार ही।'' इसलिए इस स्थिति से बाहर निकलना हो तो चाहे कोई भी हो, मन को शुद्ध करना चाहिए। मन को शुद्ध करके बुद्धि का विकास करें तो इन सबके बारे में सोच सकते हैं, जान सकते हैं।

इसलिए मन को शुद्ध करना है तो गहन ध्यान साधना करनी चाहिए, सात्त्विक शाकाहारी भोजन लेना चाहिए। अगर आपका मन शुद्ध हो तभी आप किसी को हिंसा पहुँचाए बिना मनोरंजन करेंगे। सब लाभ पहुँचाने के तरीके से जीवन जी सकेंगे।

ऐसे मन को शुद्ध कर लें, तो अच्छा बना लें, तो पवित्र बना लें, तो गलतियाँ नहीं करेंगे, पाप नहीं करेंगे, सृष्टि के विरुद्ध व्यवहार नहीं करेंगे। ऐसे लोगों को कष्ट नहीं आते।

इसलिए, भगवद्गीता के छठे अध्याय के 34वें श्लोक में भी अर्जुन ने कृष्ण से पूछा। "यह मन बहुत चंचल है, क्षोभ उत्पन्न करता है, बलवान है, दृढ़ है।" ऐसे मन को नियंत्रित करना हवा को दबाने जितना कठिन साध्य है, ऐसा मैं मानता हूँ। कैसे ? ऐसा अर्जुन ने पूछा।

तब श्रीकृष्ण ने छठे अध्याय के 35वें श्लोक में कहा, हे अर्जुन! मन को नियंत्रित करना कठिन ही है, क्योंकि यह चंचल है। इसमें कोई संदेह नहीं है, लेकिन अभ्यास और वैराग्य के द्वारा मन को नियंत्रित किया जा सकता है, ऐसा उन्होंने कहा।

यहाँ श्रीकृष्ण जी ने वैराग्य कहा है, इसका अर्थ है कि सब चीज़ों पर, सभी लोगों पर जो ममकार है, उसे छोड़ देना चाहिए। यह ध्यान के लिए बहुत सहायक होता है। इसका अर्थ उन्हें छोड़ना नहीं है, बल्कि उन पर जो ममकार है, उसे छोड़ना है।

इसी तरह अभ्यास का अर्थ है नित्य ध्यान, प्रतिदिन नियमित रूप से ध्यान करना चाहिए। ऐसा करने से यह प्रतिदिन निश्चित रूप से यह बहुत सहायक होगा। ऐसा करने से धीरे-धीरे विचार कम होते जाते हैं। जैसे-जैसे विचार कम होते जाते हैं, वैसे-वैसे ध्यान की स्थिति में जाते हैं। उस स्थिति में ऐसे बैठे-बैठे, धीरे-धीरे कुछ सप्ताह या फिर कुछ महीने ऐसे बैठते रहने से धीरे-धीरे मन शुद्ध होता है।

इसीलिए मैं बहुत से लोगों को भिमवरम लगातार छह महीने आने के लिए कहता रहता हूँ, उन्हें पीछे मुड़कर देखने की जरूरत नहीं

पड़ेगी। पहले के व्यवहार में और अब के व्यवहार में बहुत बदलाव आएगा, उनके घरवाले ही आश्चर्यचकित हो जाएँगे। तुम ऐसे कैसे बदल गए? ऐसा कहेंगे। ये लोग हँसेंगे कि मैं बदल गया हूँ क्या, लेकिन उनके व्यवहार में बहुत बदलाव दिखाई देगा। अनावश्यक बातों पर चिढ़ना, गुस्सा करना, आलोचना करना, झगड़े करना कुछ भी नहीं रहेगा, वे शांत रहेंगे। अगर कोई कुछ कहे, तो वे हँसेंगे।

इसी तरह जैसे-जैसे मन नियंत्रण में आता जाएगा, विचार कम होते रहते हैं। घंटों-घंटों बैठ सकेंगे। इस तरह धीरे-धीरे मन शुद्ध होता है, मन में बदलाव आता है, अच्छा बदलाव आता है। इसके कारण अपने जीवन में अच्छे ही कार्य करेंगे, भविष्य में अच्छे परिणाम प्राप्त करेंगे।

इसलिए याद रखिए, यह बात जाननी चाहिए कि केवल ध्यान से ही मन में अच्छा बदलाव होता है। सिर्फ़ ''श्वास पर ध्यान'' केंद्रित करने वाले ध्यान में ही मन को बदलने की शक्ति होती है। इसीलिए, मनुष्य बदलना है तो मन बदलना है। मन बदलना है तो कोई भी हो, ध्यान करना चाहिए। ध्यान करने से ही कोई भी अपने अंदर बदलाव ला सकता है।

इसलिए, ध्यान को कम न समझें। मैं एक और बात भी कह रहा हूँ। ध्यान का अर्थ है ''श्वास पर ध्यान।'' ''श्वास पर ध्यान'' के द्वारा ही वास्तविक ध्यान की स्थिति प्राप्त होती है, धीरे-धीरे मन शुद्ध होता है। किसी भी मनुष्य में बदलाव आता है। इसलिए ''मन बदलना है तो ''श्वास पर ध्यान'' का ध्यान करना ही होगा।

श्री तटवर्ती वीर राघवराव के हिन्दी किताब

1.	आत्म शास्त्र ।	Rs.200/-
2.	ध्यान विद्या ।	Rs.160/-
3.	भगवद् गीता का सार ।	Rs.160/-
4.	सत्य मार्ग ।	Rs.160/-
5.	मरने से पहले मरना है।	Rs.130/-
6.	गाईडिंग ध्यान क्यों नहीं ?	Rs.120/-
7.	भगवान कौन है।	Rs.120/-
8.	कर्म सिद्धांत ।	Rs.120/-
9.	विज्ञान का अर्थ - निहितार्थ ।	Rs.120/-
10.	ब्रह्म ज्ञान ।	Rs.100/-
11.	यह जीवन क्यों है ?	Rs.100/-
12.	मेहर बाबा का संदेश ।	Rs.100/-
13.	कौन सा ध्यान सही है ?	Rs.100/-
14.	इच्छाओं के कारण होने वाली हानियाँ	Rs.100/-
15.	शंकराचार्य जी का ज्ञान संदेश	Rs.100/-
16.	कठोपनिषद्	Rs.100/-
17.	उपमान ज्ञान संदेश	Rs.100/-
18.	शिरडी साई के संदेशों	Rs.100/-
19.	मरने के बाद, साथ में आने वाले विषयों ।	Rs.80/-
20.	भगवत के दृश्यों का अर्थ ।	Rs.80/-
21.	मन - 01	Rs.80/-
22.	मन - 02	Rs.80/-
23.	आत्म हंतक कौन होता है ।	Rs.70/-
24.	स्त्री जन्मों में सीखने वाले विषयों, पुरुष जन्मों में सीखने वाले विषयों।	Rs.70/-
25.	दुख निवारण का मार्ग	Rs.75/-
26.	उत्तम पुरूष	Rs.60/-
27.	आर्थिक स्थिति बढाना है तो ?	Rs.60/-
28.	निर्वाण मार्ग	Rs.60/-
29.	बुद्धि विकसित होने वालों का व्यवहार।	Rs.60/-
30.	विदुर के संदेशों	Rs.50/-
31.	''जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए ?''	Rs.50/-
32.	सत्य	Rs.50/-
33.	क्या हम इस लोक के वासी हैं या परलोक के वासी हैं ?	Rs.50/-
34.	गुरू को पहचानना कैसे ?	Rs.50/-
35.	विद्यार्थियों के विकास के लिए ध्यान विद्या	Rs.50/-
36.	शाकाहार ही मानव का आहार है!	Rs.50/-
37.	ब्रह्मं क्या है ?	Rs.50/-
38.	शंकराचार्य जी का जाग्रत पंचक	Rs.50/-
39.	शंकराचार्य जी का निर्वाण शट्कम	Rs.50/-
40.	चैंपियन बनना हो तो ?	Rs.50/-
41.	तीन प्रकार के जीवन	Rs.50/-
42.	अहिंसा और शखाहार	Rs.50/-
43.	संकल्प अर्थात ?	Rs.40/-

''अत्यधिक मोह और ममता मन की शांति छीन लेते हैं।'' स्वाभाविक रूप से, हर किसी को अपनी पत्नी, पुत्रों, धन, अपने पास जो कुछ है, अपनी कमाई हुई चीज़ों पर ''ममता'' होती है। जिससे ममता होती है, उसे कुछ भी हो जाए, या वह दूर हो जाए, तो बहुत अशांति हो जाते हैं। पात्री जी हमें क्या बताते हैं, तो कहते हैं कि ममता नहीं होनी चाहिए। सबके साथ रहना चाहिए, लेकिन ममता नहीं होनी चाहिए। ''कमल के पत्ते पर पानी की बूँद की तरह हमें जीना चाहिए।'' यानी ''पानी की बूँद कमल के पत्ते पर ही रहती है, लेकिन उससे चिपकती नहीं है।''

''मनुष्य के विभिन्न प्रकार के व्यवहारों का कारण मन ही है।'' मन के अनुसार ही मनुष्य का व्यवहार होता है। मन जैसा कहता है, इंद्रियाँ और शरीर वैसे ही काम करते हैं। ऊपर से करने वाला शरीर ही दिखाई देता है, लेकिन करवाने वाला मन ही है। इसीलिए पत्री जी कहते हैं,''बाह्य नहीं - अपने अंतर को देखो।'' अंतर में क्या है ? आत्मा है ।ऊपर मन है। उस मन को शुद्ध करने का प्रयास ही हमें करना चाहिए। वही मार्ग पत्री जी ने हमें दिया है, श्वास पर ध्यान का ध्यान। सही ध्यान। अर्थात, श्वास पर ध्यान ही।

– ब्रह्मर्षि तटवर्ती वीर राघव राव

₹ 80/-

Scan these QR codes using Google Lens to download the books of Mr. Tatavarthy Veera Raghava Rao & Mrs.Rajyalakshmi from the website.

Telugu Books	English Books	Hindi Books	Kannada Books	Tamil Books